

**THE BOOK WAS  
DRENCHED**

UNIVERSAL  
LIBRARY

OU\_180033

UNIVERSAL  
LIBRARY





इस संस्करण के अधिकार प्रकाशक के आधीन

मुद्रक : प्रकाशक  
प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद  
उन्नीस सौ छियालीस

---



## क्रम



|              |      |      |     |
|--------------|------|------|-----|
| १—देवदासी    | ...  | ...  | १   |
| २—अनुवर्तिनी | ...  | ...  | ३३  |
| ३—काई        | ...  | ...  | ६८  |
| ४—नरक        | ...  | .... | ८८  |
| ५—कुछ नहीं   | .... | .... | १२४ |
| ६—देवोत्थान  | .... | .... | १३५ |





## देवदासी

उस समय मन्दिर निर्जन होचुका था। निस्तब्धता सनसना रही थी। बाहर घोर अन्धकार था। आकाशमें बिजली कड़क रही थी। उस युवकने तलवारको टेका और उठ खड़ा हुआ। भीतर सब काम कर चुकनेपर पुजारी ने सोचा कि अब शीघ्र ही उसे प्रातः के चरणोंपर शीश रखकर सोने जाना चाहिए।

पल्लव-राजके इस विशाल मन्दिरमें कामाक्षीका यह भव्य स्वरूप देखनेकेलिए दक्षिणपथके अनेक भागोंसे लोग आ-आकर एकत्रित होते थे। तीन-सौ वर्ष पहले सातवाहनोंके अन्तपर सम्राट् विष्णुगोपने पल्लव साम्राज्यको स्वतन्त्र कर दिया था। उनके उत्तराधिकारी आज कदम्बों और गंगेयोंके भी प्रभु थे। पेलार नदीके पास काञ्चीका भव्य नगर भुवन-विख्यात था। राजप्रासादके विराट् अलिन्दोंमें दिनमें अग्र-धूम जलता, रात्रिमें दीपाधारोंसे प्रकाश जगमगाता। बाज़ार-हाटमें सुदूर जावा-सुमात्राके व्यापारी आ-आकर बैठते। समुद्रतीरपर अनेक सफ़ेद पालवाले जहाज़ खड़े रहते, प्रकाशस्तम्भोंसे रातको किरणें फूट-फूटकर अथाह सागरकी चञ्चल जलराशिपर खेल उठतीं। महेन्द्रके समान विक्रमी सम्राट् सिंहविष्णु के चरणोंपर आज प्राचीन चोल और पाण्ड्यके रत्नजटित मुकुट रखे थे, चालुक्यराजने मैत्रीका कर बढ़ा दिया था। सम्राट् सिंहविष्णु युवावस्थाको आजसे अनेक वर्ष पहले पार कर चुके थे। राजकुमार महेन्द्रवर्माकी सन्त अप्यारस्वामीके प्रति श्रद्धा होना प्रजामें प्रसिद्ध होचुका था, क्योंकि वह पिताकी आज्ञाके बिनाही नगरके ईशान कोणमें शैव मन्दिर बनवा रहे थे।

पुजारी रत्नगिरिने इधर-उधर देख भक्तिसे प्रतिमाको प्रणाम किया और सोने चला गया। प्रायः आधीरात बीत गयी। आकाशमें बादल गरज रहे

## देवदासी

थे । मन्दिरका विशाल प्राङ्गण पानीसे भीगगया था । उसी समय बिजली बड़े वेगसे कड़कउठी । मन्दिरका विशाल गोपुर अन्धकारमें एक बार चमकउठा । युवक तलवार लिये कुछ देर खड़ा रहा, फिर बाह्य परिवेष्टिको लाँघकर भीतर अलिन्दमें आगया । वह एक स्तम्भके पीछे हांगया और अन्धकारमें कुछ देखनेका प्रयत्न करने लगा ।

किसीने उसके कन्धेपर हाथ रखकर धीरेसे कहा—‘आगये रङ्गभद्र ?’

रङ्गभद्रने मुड़कर कहा—‘तुम बुलातीं और मैं न आता रुक्मिणी ! देवदासीका कहना तो भगवान् भी नहीं टाल सकते फिर मैं तो साधारण मनुष्य हूँ ।’

‘तुम सचमुच बड़े साहसी हो कुमार !’ देवदासीने धीरेसे कहा । युवकने उसका वह दीर्घ निश्वास भी सुना । उसने उद्वेगसे उसका हाथ पकड़लिया और कहा—‘रुक्मिणी, मैं कबतक तुम्हारी अवहेलनामें तड़पता रहूँगा ? कबतक मैं उस भविष्यके सागरमें लहरोंकी दयापर अपना पोत भटकता रहूँगा ? आज प्रायः एक वर्ष बीतगया । अब मुझे फिर सिंहल लौटजाना होगा । अबके मैं सिंहलके बहुमूल्य मोती काशी भेजनेका व्यापार करना चाहता हूँ । चलोगी मेरे साथ ?’

देवदासीने कुछ नहीं कहा । वह चुपचाप देखतीरही । युवकने फिर कहा—‘सुन्दरी, तुम किस चिन्तामें डूबगयी हो ? धनकी कमी नहीं, धर्मकी कमी नहीं, अधिकारकी कमी नहीं, प्रेमकी कमी नहीं, और तुम रूपशालिनी हो तो फिर मुझे रूपकी भी कमी नहीं—फिर तुम्हें कौनसी चिन्ता खाये जा रही है ?’

देवदासी काँपउठी । उसने धीरेसे कहा—‘धीरे कुमार, धीरे; कहीं देवता न सुनलें । मैं जाती हूँ ।’

वह सचमुच एकदम चलीगयी और युवकके कण्ठमें उसका स्वर अटककर रहगया ।

## देवदासी

मन्दिरका विशाल अलिन्द सूना होगया । युवक लौटचला ।

—२—

दूसरे दिन पुजारीने पूजा समाप्त करके बाह्य प्रवेशद्वारके पास आकर देखा सूर्यमणि भक्तिसे नमस्कार कर रही थी । उसने गद्गद् होकर उसे आशीर्वाद दिया । सूर्यमणि के श्याम मुखपर उस स्वर्णमुकुटकी हल्की प्रभा छिटककर उसे किंचित् हरिताभ बनारही थी । उसके सफ़ेद चीनांशुकोंमें वह सुघर अङ्ग-संगठन किसी चतुर शिल्पीकी कलाका अद्भुत प्रमाण लगता था । रत्नों और आभूषणोंसे लदी वह कुमारी, मानसरोवरके मांसल इन्दीवर-सी पुलकउठी । उसके विशाल नयनोंकी कोरोंमें शतदलके काँपते दलोंकी लालिमा, चपल चितवनकी विद्युत्-वाहिनि तृष्णाको सहलादेती थी । उसने कहा—‘देव, आप आजकल मुझे कभी रामायण नहीं सुनाते ? पहले तो आपका स्वर गूँजता था : रुक्मिणी नृत्य करती थी : समस्त मन्दिर गूँज उठता था : माता कामाक्षीकी प्रतिमाके अधरोपर मुस्कान छाजाती था..... !’

‘बेटी’, पुजारीने मन्दस्मितसे कहा—‘रत्नगिरि तो तत्पर है, किन्तु तू जबसे राजमाताकी सेवामें जाने लगी है तबसे तुझे देवसेवाका समय ही कहाँ मिलता है ? अब तो तू सेनापतिके पुत्र धनञ्जयकी पत्नी होने जा रही है न ?’

‘हाँ, भगवन् !’ सूर्यमणिने अपने पाँवके अँगूठेको लाजसे देखते हुए कहा—‘लेकिन मैं आज रामायण सुने बिना नहीं जाऊँगी ।’

‘अरे, तेरा हठ नहीं गया, पगली !’ रत्नगिरिने हर्षित होते कहा । और फिर उसने आवाज़ दी—‘रुक्मिणी !’

रुक्मिणी स्तम्भके पीछेसे निकलकर आगयी ।

वृद्ध पुजारीने कहा—‘बेटी, सूर्यमणि रामायण सुनना चाहती है ।’

‘ओह’, रुक्मिणीने पुलकतेहुए कहा—‘मुझसे ही क्यों न कह दिया ? अभी लो ।’

## देवदासी

कुछही देर बाद उस अलिन्दमें लोगोंकी एकभीड़ इकट्ठी होगयी । सूर्यमणिने देखा धनञ्जय भी खड़ा था ।

बृद्ध रत्नगिरिने स्वस्तिवाचन किया और मृदङ्गपर थाप पड़ी । उधर देवदासी रुक्मिणीका नूपुर बजउठा । द्रिम - द्रिमके उस अप्रतिहत नादपर यौवनसे स्फीत कमल-चरणका मंथर चलन स्तंभोसे टकराकर समस्त अंतराल में काँपउठा । युवक धनञ्जयके नयन गड़गये । देवदासी आज मेनका - सा नृत्य कररही थी । रत्नगिरि गानेलगे । उनके गम्भीर स्वरसे लोगोंके हृदयोंमें एक पवित्र भावना छागयी । नर्तकीके अङ्गचालनका मादक उल्लास धनञ्जय की धमनी - धमनीमें डोलउठा । सूर्यमणिने एकाएक दृष्टि उठाकर देखा धनञ्जय मन्त्रमुग्ध-सा लोलुप दृष्टिसे देवदासीके उच्छृङ्खल यौवनको खारहा था । वह चञ्चल होगयी । शङ्का और ईर्ष्याने उसके हृदयपर आघात किया । देवदासी नृत्य करतीरही, रत्नगिरि गातारहा और सूर्यमणिने देखा धनञ्जयके नयनोंके पद्म गिरना भूलगये थे । वह धीरेसे उठा और धनञ्जय के पास गयी । धनञ्जयने उसे मुड़कर भी नहीं देखा । सूर्यमणिनेकेलिए समस्त सौन्दर्य विप होगया । वह एकाएक चिल्लाउठी — ‘रोकदो यह नृत्य ! यह नृत्य रोकदो ! नहीं, नहीं, यह नृत्य नहीं है ... !’

देवदासी विभोर होकर नाचरही थी । एकाएक उसके पैर ठिठक गये, जैसे किसीने उसपर वज्रका आघात किया हं । उसने देखा सूर्यमणि उसे ज्वलन्त नेत्रोंसे देखरही थी । रत्नगिरि गाना रोककर उठखड़ा हुआ । एकत्रित जन समुदाय कोलाहल करनेलगा ।

देवदासी क्रोधसे पुकार उठी — ‘देवदासीका अपमान करना देवता का अपमान करना है मूर्ख लड़की ! यदि तेरे हृदयमें पाप है तो तू मन्दिर छोड़कर चलीजा ।’

इससे पहले कि रत्नगिरि कुछ कहे रुक्मिणी परिक्रमाकी ओर चल पड़ी । उन्मत्त-सा धनञ्जय उसके पीछे चलदिया । सूर्यमणि कटे वृत्त - सी

## देवदासी

भूमिपर गिरकर रोनेलगी। समुदाय तितर बितर होनेलगा। रत्नगिगि कुछभी नहीं समझा। इस प्रकार अकारण व्याघातसे उसका चित्त सूर्यमणिसे उदासीन होगया। वह उठकर भीतर चलागया। सूर्यमणि स्तम्भके किनारे रोतीरही।

—३—

वृद्ध सिन्धुनाद कवि था। सूर्यमणि उसकी एकमात्र पुत्री थी। जब वह गाता था साम्राज्यका बड़े से-बड़ा कठोर हृदय सेनाका उच्च पदाधिकारी भूमउठता था। उसके गीतोंको आज पल्लव ही नहीं, चोल और पाण्ड्यके घर घरकी स्त्रियाँ गातीं, पुरुष मुग्ध होकर सुनते और सम्राट् सिंहविष्णु उसे अपने भाईके समान प्यार करते। देवदासियाँ उसके गीतों पर जिस तन्मयतासे नृत्य करतीं उसे देखकर लगता जैसे वह सचमुच देव-कन्या हों। उसके गीतोंकी प्रवहमान लय प्राचीसे पश्चिमतक गगनमें अनन्त वर्णोंसे भरी नीलिमाकी छाया-सी काँपती रहती और प्रेम और करुणाका वह स्रोत कहींभी समाप्त नहीं होता, कहींभी जैसे विश्रान्तिकों आवास न मिलता।

सिन्धुनाद इस समय वीणाके तारोंपर उँगलियाँ फेरकर यौवनके खोयेहुए स्वरका उत्ताल ढूँढरहे थे। उनके शरीरपर बहुमूल्य रेशम मन्द-मन्द वायुमें फहरारहा था। उनके प्रकोष्ठकी दीवारोंपर सुदूर ताम्रलितिके प्रसिद्ध चित्रकारोंने अद्भुत चित्र अङ्कित किये थे। स्फटिकके स्तम्भोंपर दीपों का झिलमिल प्रकाश प्रतिध्वनित होरहा था, जैसे बादलोंमें बिजली चमक रही थी। मादक सुगंधि नाही समीर जब अगर्भूमको कवरी खोलकर नृत्य करने लगता था तो दीवारोंपर छायाएँ मुद्रा बनाने लगतीं और वीणाके करुण स्वर रुमभुम करते वायुकी लहर-लहरपर गाउठते।

सिन्धुनाद इस समय दमयन्तीका विलाप गारहे थे। उनकी यह कविता अजर-अमर होजायेगी। आज उनके भाव सामामें नहीं थे। नल

चला गया है। दमयन्ती पेड़-पेड़से पूछ रही है, मृग-मृगी कातर होकर रो पड़े हैं, आकाशमें प्रतिपदाका चन्द्र उग आया है, सघन वनस्पतिपर उसकी विलोल मुखरा किरणें काँपरही हैं जैसे सागरपर फेन काँपरहे हों, जैसे श्यामा सुन्दरीके कर्णफूलोकी आभासे कपोलोपर प्रकाश रंगरण करता अवगुण्टन खींच रहा हो।

सिन्धुनाद तन्मय होकर विभोर हो गये। एकाएक भारी भारी श्वास लेती सूर्यमणिने प्रवेश किया और चुपचाप पास बैठकर सुनने लगी।

दमयन्ती उस समय आकाशके तारोंसे पुकार-पुकारकर पूछ रही थी—हे नील असीमके बुद्बुदो ! हे अनन्त कवरीके शीशफूलो ! कहाँ है वह मेरे हृदयकी एकमात्र मान्दवना ?

सूर्यमणि रो उठी। वृद्धका स्वप्न टूट गया। गीतके आवत्तोंमें पड़कर सूर्यमणिके टूटे प्यारकी भग्न नौका झटके खाने लगी। वह पिताकी गोद में सिर रखकर रोने लगी। वृद्धने एक हाथसे वीणाकां दटा दिया और फिर उसने कहा—‘क्या हुआ बत्से ?’ पहले उमने ममझा शायद गीतको सुन कर रो रही है। सूर्यमणिने कुछभी नहीं कहा। वह रोती रही। उसके मुख की पत्र-लेखा बिगड़ गयी। वृद्धने उसका सिर उठाया। वेदनासे उसका मुख कातर हो उठा था। वृद्धका हृदय विह्वल हो उठा। उमने कहा—‘पुत्री, तुझे किस बातका शोक है ? मैंने आज तक कभी तेरी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। आज तक तू ही मेरे जीवनका एकमात्र सहारा रही है। फिर तेरे नयनोंमें यह व्याकुल अश्रु किमलिए ? करुण गत्रिकी भाँति तेरे इन पङ्कज दलोंपर यह नीहार-करण क्यों ?’

सूर्यमणिने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह रोती रही। उम समय कवि को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे साक्षात् कामाक्षी आज ग्लपयित करणसे उच्छ्वास रुद्ध-सी आर्त्तमना सिसक उठी थी। उसके नयनोंमें आँसू छा गये। देर तक दोनों कुछ न बोले। सिन्धुनाद अपनी पुत्रीके सिरपर हाथ फेरते रहे, जैसे

## देवदासी

उन्होंने कविताको सहलादिया था। सूर्यमणि के सघन सचिक्कण केशोंपर वृद्ध का वात्सल्यसे भरा आर्द्र श्वास ऊष्मासे भरकर बिखरगया। सूर्यमणिका हृदय उद्वेगसे बारबार ठोकर खाकर गिरजाता और आँसू बह-बह आते।

वृद्धने आन्दोलित होकर कहा—‘सूर्ये, कहन ? क्या कष्ट है तुम्हें जो पावसकी नदीकी भाँति तेरे आँसू अज्ञानवास करने निकले जा रहे हैं ?’

सूर्यमणिने सिर उठाया। आँखोंमें आँसू चमकरहे थे, जैसे हीरक के चषकमें वारुणी छलकरही थी। डबडबाते अश्रु प्रभातके उज्ज्वल प्रकाशके समान काँप रहे थे अथवा जैसे सीपमें मोती जगमगाउठे हों।

‘सूर्यमणि’ वृद्धने फिर कहा—‘पल्लवके इस समुद्र पर्यंत साम्राज्यमें मैं तेरे अतिरिक्त किसीको भी इतना भाग्यशाली नहीं गिनता था। आज तेरी आँखोंमें यह अश्रु क्यों ? सिन्धुनादने वही किया जो तूने चाहा। जिसके लिए गजकुमारियाँ लालायित थीं उस कामदेवके सदृश लावण्य-मनोहर धनञ्जयकी तू पत्नी होनेवाली है, फिर तुम्हें कैसा दुःख ?’

सूर्यमणिने धीरेसे कहा—‘पिता, वह मेरी उपेक्षा कर रहा है। आज वह देवमन्दिरमें एक साधारण नर्तकीके पीछे पागल-सा घूम रहा था। मैं हृदयकी साक्षी करके कहती हूँ उसने मुझे एकबार भी मुड़कर नहीं देखा।’

‘यह नहीं होसकता सूर्यमणि, यह नहीं होसकता।’ वृद्ध सिन्धुनाद उठखड़े हुए। ‘किन्तु’ उन्होंने कहा—‘प्रेममें बल नहीं चलसकता। मैं जानता हूँ धनञ्जय युवक है। यौवन प्रेमके अतिरिक्त लोभमें भी पड़सकता है। किन्तु बल प्रयोग भी तो नहीं किया जासकता। मैं उसे समझाऊँगा पुत्री, इतनी व्याकुल न हो।’

‘नहीं पिता’ उच्छ्वसित सूर्यमणिने कहा—‘नर्तकी मुझसे भी सुन्दर है। उसका रङ्ग तुहिन-सा श्वेत, कमल-सा लालिम, रेशम-सा चिकना है, और सागर-सा गम्भीर रूप है। उसमें अनावृत यौवन है, मादकतामें वह मेनका जैसी है। उसके नयनोंमें त्रिभुवन काँपते हैं, मेखलाकी प्रभासे

## देवदासी

उसकी मन्द-मन्द गतिमें भुवनमोहिनी वशीकरणकी शक्ति आजाती है। उसकी कोमल बाहु जब नृत्य करनेमें लचकनी हैं तब स्वर्गका सुख जैसे तुलापर टँग जाता है। उसके केशोंकी सुरभिसे देवमन्दिर कमलवनकी भाँति गन्धित रहता है, उसकी मांसल गरिमापर चीनांशुक ऐसे दिखायी देता है जैसे शरदके प्रसन्न आकाशमें धवल स्वर्गगङ्गाका मुखरित प्रवाह हो.....!

सिन्धुनाद हठात् बोल उठे—‘सूर्यमणि, वह कौन है ?’

सूर्यमणिने पराजित स्वरमें कहा— ‘पिता, वह देवदासी रुक्मिणी है।’

‘देवदासी रुक्मिणी !’ उनके मुखसे आश्चर्यसे निकल गया।

‘हाँ, पुजारी रत्नगिरिकी पुत्री रुक्मिणी।’

‘ओह !’ कहकर कवि सिन्धुनाद बैठ गये जैसे एकाएक चलते-चलते महानद थम जाय और समस्त लहरोंका कलकल नाद क्षणभरकेलिए श्वास रोककर स्तब्ध हो जाय। उन्होंने कहा—‘सूर्यमणि, तू जा। मुझे सोचने दे।’

सूर्यमणि चकित-सी लौट आया। वृद्ध सिन्धुनादको कुछभी नहीं सूझा। वह चुपचाप वैसेही बैठे शून्य दृष्टिसे सामने जलते दीपाधारमें काँपती शिखाओंको देखते रहे।

—४—

रात्रिके निरावरण नीलाकाशमें सहस्रां नक्षत्र टिमटिमाने लगे। पुजारी रत्नगिरि सोचमें पड़ गया। उसके वृद्ध मुखपर चिन्ताकी रेखाएँ खिच गयीं। कुछ देर वह टहलतारहा। वृद्ध सिन्धुनादने कहा—‘तुम जानते हो रत्नगिरि, सबकुछ जानते हो। पर देवदासीके प्रति धनञ्जयका हृदय आकर्षित है यह तुम भी नहीं जानते, मुझे इसका विस्मय है।’

‘तुम भी वृद्ध हो गये हो सिन्धुनाद ! जीवन-भर जिमने अटूट

## देवदामी

विश्वामित्रका-सा दर्प कभी नीचा नहीं होंनेदिया, जिसके पवित्र जीवनसे संसार विस्मित हो उठा था, जिसके सामने सम्राट् भिंहविष्णु एक साधारण नागरिककी भाँति मिर झुकाकर खड़ा रहता है उसकी बातपर तुम सन्देह कर रहे हो ? जिसने तुम्हारे जीवनके महानतम पापको छिपानेकेलिए अपने युगयुगके संचित तप और यशको ठुकरा दिया, जिमने ब्रह्मचारी होकर भी केवल तुम्हारी मित्रताकेलिए रुक्मिणीको अपनी पुत्री कहकर प्रसिद्ध कर दिया, उसकी बातपर तुम अविश्वास कर रहे हो ?

सिन्धुनादने कम्पित कण्ठसे कहा—‘मित्र, यह तुम क्या कह रहे हो?’

रत्नगिरिने कहा—‘तुम मेरे बाल्य-सखा ही नहीं, गुरुभाई भी हो। तुम कवि हो। सौन्दर्यकी छलना ही तुम्हारे अन्तस्तलकी अन्तिम प्रेरणा है। जिस दिन तुमने राजकुमारी इन्दिराको देखा था उसीदिन मैंने तुमसे कहा था कि तुम भूल कर रहे हो। किन्तु तुमने कुछभी नहीं सुना। आजसे बस वर्ष पहिले जब तुम रुक्मिणीको गोदमें लेकर आये थे मैंने उसे बिना हिचकिचाये गोदीमें उठालिया था। राजकुमारी इन्दिरा आज राजमाता इन्दिरा है। आज संसार उसके पुण्यकी गाथा गारहा है। वह नहीं जानती कि उसका पाप आजभी जीवित है। उससे कह चुका हूँ कि रुक्मिणी मर चुकी है। किन्तु सिन्धुनाद, आज जब वह पाप मानव-सत्ताके परम पुण्यके रूपमें मुझे एकमात्र सान्त्वना दे रहा है, तुम उसपर लाञ्छन लगा रहे हो ? रुक्मिणी की पवित्रता तुषारधौत शतदलके समान है, देवतामें उसकी भक्ति सुमेरुके समान है। उसने अपना तन-मन-धन केवल, केवल देवताकी सेवामें अर्पित कर दिया है। वह मनुष्यसे प्रेम नहीं कर सकती। मैं उसे नहीं दे सकता। देवी कामाक्षीकी शपथ है मैं उसे नहीं दे सकता।’

‘तब तो सूर्यमणि रोरोकर मर जायगी?’ सिन्धुनादने करुण स्वर से कहा—‘बोलो रत्नगिरि, मेरा इस संसारमें और कौन है ? किसलिए मैं इतनी माया-ममताको परवश-सा आजभी सहेजे बैठा हूँ। यश नहीं

## देवदासी

चाहिए, धन नहीं चाहिए। सांसारिक भोगोंसे मैं तृप्त हो चुका हूँ। देवदासी रुक्मिणीको कुछ दिनकेलिए तुम छिपा नहीं सकते ? धनञ्जय उसके पीछे पागल हो रहा है। यदि यह दीपशिखा उसके सामने रहेगी तो वह शलभ की भाँति परिभ्रमण करके अपने पंख जलालेगा। देवदासीसे कभी भी उसका विवाह नहीं हो सकता। फिर सूर्यमणि के जीवनपर आघात किसलिए ?

रत्नगिरि गम्भीर स्वरसे चिल्ला उठा— ‘सिन्धुनाद, रुक्मिणी भी तुम्हारी पुत्री है। क्या तुम एक पुत्रीकेलिए दूसरीका अहित करना चाहते हो ? जब संसारमें तुम्हें राजकुमारी इन्दिरासे बढ़कर कुछ भी नहीं था उस समय रुक्मिणी ही तुम्हारी मन्तान थी। क्या अब तुमको उससे तनिक भी स्नेह नहीं ? क्या संसारके नियमोंमें तुम्हारा हृदय इतना कायर हो गया है कि यदि संसार नहीं सह सकता तो तुम भी उसे पुत्री नहीं मान सकते ?’

सिन्धुनाद उद्भ्रान्त-से इधर-उधर घूमने लगे। उनके मुखपर आ-शङ्का काँप रही थी। वे दो पाषाणोंके बीचमें भिच गये थे। उन्होंने मुड़कर कहा— ‘तो रत्नगिरि, देवदासीका मुझे दे दो। मैं साम्राज्यके नियमोंको ठोकर मारकर, देवताका अपमान करके, अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसे अपनी पुत्री घोषित करूँगा और उसका कहीं विवाह कर दूँगा।’

रत्नगिरिने धीरेसे कहा— ‘वह नहीं हो सकता सिन्धुनाद !’

‘तुम डरते हो रत्नगिरि ?’ सिन्धुनादने आगे बढ़कर कहा— ‘राज-माता इन्दिराका सतीत्व झूब जायगा ? पांडय, चोल और चालुक्य देशोंमें पल्लवराजके कुटुम्बकी निन्दाके गीत गाये जायेंगे ? सिन्धुनादका पाप प्रकट हो जायगा ? रत्नगिरिकी घोर मिथ्या सूर्यकी तरह जगमगा उठेगी, इसलिये ?’

‘नहीं’, रत्नगिरिने कहा — ‘रुक्मिणी फिरसे पापमें लिप्त नहीं हो सकती। वह देवताको निष्काम रूपसे अर्पित हो चुकी है। वह लौटायी नहीं जा सकती। उसका जीवन धर्मका एक महान् छन्द है, उसको अपौरुषेय कहकर ही गाया जा सकता है। वह कोई साधारण हाटोंमें नाचनेवाली स्त्री

## देवदासी

नहीं है, वह कलाश्रांमों पारङ्गत होकर पुरुषोंसे पुष्कलकेलिए विलास करने वाली गणिका नहीं है। वह उत्सर्ग करचुकी है अपना स्त्रीत्व, अपना मातृत्व, आजन्म कुमारी रहनेकेलिए। वह नहीं लौट सकती। वह देवता की सम्पत्ति है। सिन्धुनाद, तुम कर्त्य-अकर्त्यका भेद नहीं समझ पा रहे हो। तभी तुम कविताका प्रथम चरण प्रेम भूल गये हो। जाओ लौट जाओ ! देवदामी तुम सबसे अस्पृश्य आकाश-मन्दाकिनीका कमल है। उसे तुम नहीं पास करते।’

सिन्धुनाद आर्त्त-से बैठ गये। उनसे कुछ भी नहीं कहा गया। उन्हें चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा छाता हुआ दिखने लगा। उनके सामने सूर्य-मणिका आतुर स्वरूप बारबार घूम गयी, जो उनकी प्रतीक्षा करती होगी, जिसे नहीं मालूम कि रुक्मिणी उसीकी बहिन है। जिस पिताकी कीर्त्तिसे आज पल्लव साम्राज्यमें स्थित सरस्वतीका अञ्चल श्वेतसे भी अधिक उज्ज्वल हो उठा था, उसीका पाप वह कैसे सुन सकेगी ? कैसे सह सकेगी वह यह घोर अन्धकारकी गाथा ?

वह कुछ भी नहीं सोच सके। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर वह मन्दिर से बाहर चल दिये और बाहर खड़े स्वर्णरथपर जा बैठे। सारथिने रथ हाँक दिया। वृद्ध सिन्धुनादकी आँखोंमें आँसू भर आये। उनके हृदयमें आँधी चल रही थी।

रात्रिके घनघोर अन्धकारमें एक छाया-सी चलने लगी। दूसरी ओर से दूसरी छायाका अङ्गचालन हुआ। एकने दूसरेके पास आकर कहा—‘कौन ? रङ्गभद्र तुम आ गये ?’

‘हाँ देवी !’ रङ्गभद्रने धीरेसे कहा—‘क्या तुम तत्पर हो ?’

रुक्मिणीने कुछ नहीं कहा। रङ्गभद्र बोला—‘देवि ! यहाँ तुम्हारा मान तब हो सकता है जब तुम अर्घ्यके फूलके समान अपनी गन्ध स्वयं नहीं पहिचान पाओगी। तुम्हारी मनुष्यताके हननपर तुम्हारा यह स्वर्ग है। किन्तु

## देवदामी

क्या तुम्हारे हृदयमें कोई कोमलता शेष नहीं है ? क्या तुम केवल पाषाण हो ? किन्तु कामाक्षीके मन्दिरमें प्रस्तर गाते हैं, प्राचीरों बालती हैं। एक तुम हो जो अपने जीवनको देवसेवाकी छलनामें बिताये जा रही हो। कभी किसीसे दो पल प्रेमकी बात नहीं, तुम तो स्त्रीत्वके प्रारम्भिक चिह्नतक भूल गयी हो। किसलिए यह सब रुक्मिणी ?

‘देवताकेलिए रङ्गभद्र । क्या यह सब त्याग करना मेरेलिए पाप नहीं होगा ?’

‘पाप ?’ रङ्गभद्रने हँसकर कहा—‘पाप यह नहीं है कि जीते-जागते मनुष्यको एक कठपुतली बना दिया है ? उससे उसकी दृष्टि छीनकर दूसरों को लुटनेकेलिए उसे नयन देदिये हैं, उससे उसके हृदयका अपहरण करके उसे दूसरोंके हृदयोंपर दस्युवृत्ति करनेकेलिए छोड़ दिया है ? यदि मनुष्यको झूठे प्रलोभन देकर उसे मनुष्य नहीं रहने दिया तो इससे बढ़कर और कौन-सा पुण्य होगा ?’

‘रङ्गभद्र ! पिताने तो देवसेवाको संसारका सबसे बड़ा सुख बताया है । फिर तुम क्या कह रहे हो ? मैं तुम्हारे मुखसे पापको बोलता हुआ सुनकर काँप उठती हूँ । किन्तु न-जाने तुम जो कहते हो अचानक ही क्यों मेरे हृदयपर आघात कर उठता है । मैं नहीं जानती तुम मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हो ?’

रङ्गभद्रका मुख प्रफुल्लित होगया उसने कहा—‘रुक्मिणी, वह स्त्री स्त्री नहीं जो अपने प्रेमीके आलिङ्गनमें बद्ध होकर विभोर नहीं हो सकती, जो आँखोंमें आँखें खोकर एकबार कलकण्ठसे उसे अपना स्वामी कहने को उद्यत नहीं हो सकती । कहाँ है तुम्हारे जीवनकी नीरव हाहाकार करती वेदनाका अन्त कुमारी ? जिस देवताके पीछे तुम पागल हो रही हो, क्या कभी उसने तुम्हारे हृदयपर हाथ रखकर उसकी धड़कनको सुना ? क्या बसन्तके मलयानिलमें पुंसकोकिलको कुहू सुनकर कभी तुम्हारे हृदयमें हूक

## देवदासी

नहीं उठी ? बोला देवदासी ? यदि प्रेम पाप है तो किसलिए कालिदासका नाम आज प्रातःस्मरणीय है ? किसलिए इस समस्त भूलोकमें प्राणी एक-दूसरेकेलिए कातर है ? यदि प्रेम पाप है तो तुम्हें क्यों आजीवन देवनासे प्रेम रखनेका दुरभिमान सिखाया गया है ?

देवदासी सोचमें पड़ गयी । रङ्गभद्र उन्मत्त-सा कहतारहा—‘क्या यह माधवी रजनीकी अनन्त सुलगन शून्यमें केवल हाहा खानेकेलिए है ? तुम्हाग यह अनिन्दित रूप, जिसको आज संसार उपेक्षाके भयावह गर्त्तमें डाले वेसुध है, किसलिए यौवनकी भुजाएँ फेलाकर हृदयमें उतगता चला जाता है ? पल्लव साम्राज्यकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नहीं जानती कि यौवन क्या है ? नहीं है ज्वालामुखियोंमें वह ताप, नहीं है आकाशके नक्षत्रोंमें वह रूप जो तुम्हारे श्वाममें है, जो तुम्हारे नयनोंमें है ? काञ्चीकी कुलनागियों का रूपका गर्व तुम्हारी अनन्त रूपराशिके सामने धूलके तुल्य है देवी !’

देवदासीने कहा—‘यही तो सेनापति तनय धनञ्जय कहते थे ।’

‘धनञ्जय ?’ रङ्गभद्रने काँपते स्वरसे पूछा—‘क्या वह आया था ? तुम्हें कब मिला ?’

देवदासीने मिर उठाकर कहा—‘कल दिनमें नृत्य हुआ था । सूर्यमणिने अचानक नृत्य रोकदिया । उससे रोषित होकर मैं भीतर चली गयी । पीछे-पीछे ही वह भी आगया ।’

‘फिर ?’ रङ्गभद्रने आशङ्कित होकर पूछा ।

‘फिर वह कहने लगे—सुन्दरी, तुम्हारे सामने सूर्यमणि कुछभी नहीं है । मैं उसे तनिकभी नहीं चाहता । मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ । संसारमें मेरी कोई अभिलाषा नहीं, केवल तुमको प्राप्त करना चाहता हूँ ।’

रङ्गभद्रने उत्सुक होकर आवेगसे पूछा—‘और देवदासी, तुमने क्या कहा ?’

## देवदासी

रुक्मिणीने उत्तर दिया — 'और देवदासीने क्या कहा यहभी जानना चाहते हो ? मैंने कहा — तुम मूर्ख ही नहीं पतित हो। एक देवदासी से तुम्हें ऐसी बात करते लज्जा नहीं आती ? क्या तुम अपनेको राजवंशका उच्चारित करनेका साहस करते हो ? तुम्हारे वाक्योंमें भीषण हलाहल है जिससे देवमन्दिरकी ईंट-ईंट मूर्छित होती जा रही है। तुम नारायणकी पवित्र विभूतिको अपमानित करनेका दुस्साहस कर रहे हो ? जिससे तुम बात कर रहे हो वह साधारण स्त्री नहीं, एक देवदासी है।'

उसका श्वास फूल गया। वह चुप होगयी। रङ्गभद्र मन्त्रमुग्ध-सा उसकी ओर देख रहा था। उसने कहा—'धन्य हो तुम देवदासी ! तुम प्रेम करना जानती हो। किन्तु जिस पाषाणको तुम जीवनका सर्वस्व बनाती हो वह आत्माका हनन है। मनुष्यकी चरम शान्ति शुष्क ज्ञान नहीं, भक्ति है। वह भक्ति नहीं जिसमें त्यागका दम्भ हो। देवदासी ! मैं तुम्हें व्यर्थ ही यह जीवन नष्ट नहीं करने दूँगा। कहाँ रुक्मिणी, तुम मुझसे प्रेम करती हो ?'

रुक्मिणीने कुछ नहीं कहा। अन्धकारमें ही उसके हाथने रङ्गभद्र के हठ हाथको पकड़ लिया। रङ्गभद्रने उसे अपने पास खींच लिया। दोनों देर तक एक-दूसरेकी आँखोंमें झाँकते रहे। रङ्गभद्रने धीरेसे कहा—'तुम्हारे चरणोंपर जीवनका समस्त वैभव उठाकर भिक्षा माँगेगा। तुम्हारे पाँव मेरे हृदयपर चलेंगे। तुम पल्लव साम्राज्यकी सबसे बड़ी धनवती, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, सबसे अधिक भाग्यशालिनी स्त्री होगी रुक्मिणी ! असमयका यह वैराग्य जैन्योंको शोभा देसकता है जो अपने शरीरको कष्ट देना ही जीवनका निर्वाण समझनेकी भूल करते हैं। तुम वैकुण्ठकी लक्ष्मी हो। काशीमें मोती बेचकर मैं दक्षिणापथका सबसे धनवान व्यक्ति हो जाऊँगा। भूल जाओ यह परिमित सीमाओंके बन्धनोंको ही अन्तिम सत्य समझनेकी कल्मषभरी छलना। तुम देवदासी नहीं हो, नारी हो। स्त्रीत्वका अधिकार तुमसे कोई नहीं छीन सकता।'

## देवदासी

देवदासीका हृदय धड़क उठा। उसका कण्ठ वाष्पस्फीत होगया। अन्धकारमें दूर बहुत-दूर कुछ हल्के-से तारे टिमटिमारहे थे। और कुछ नहीं। विशाल प्राङ्गण, दीर्घ स्तम्भ, वक्राकार अलिन्द—द्वार सब अन्धकार में एक हांगये थे। निर्जनतासे चारों ओर वायु कोलाहल-सा मचारही थी। देवदासीकी आशङ्का मन-ही मन भयभीत होगयी। उसने अपना हाथ रङ्गभद्रके वक्षपर रखदिया और विभोर-सी खड़ीरही। रङ्गभद्रने कहा—‘परमां मैं सिंहलद्वीप जारहा हूँ। प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरे साथ पोतपर आरूढ़ होकर मेरी अर्द्धाङ्गिनीके रूपमें चलांगी। परमां ही काञ्चीके देव-मन्दिरमें महात्सव होगा। उस दिन लोग अपने-अपने काममें संलग्न होंगे। किसी को भी अधिक चिन्ता नहीं होगी। हम तुम परिक्रमाके पीछे वाली पुष्करिणीके पास मिलेंगे और तुम निर्भीक, पापकी भावनासे हीन मेरे साथ चली चलांगी, क्योंकि तुम मुझे प्रेम करती हो।’

देवदासीने अपना सिर रङ्गभद्रके सुदृढ़ वक्षस्थलपर टेकदिया। उसकी आँखें बन्द होगयीं और मुँहसे धीरेसे उच्छ्वसित हुआ—‘मैं प्रतिज्ञा करती हूँ रङ्गभद्र, मैं चलूंगी। तुमने मेरी नीरवतामें जो वीणा बजायी है उससे मेरा रन्ध्र-रन्ध्र गूँजरहा है। मैं अवश्य चलूंगी।’

रङ्गभद्रने अन्धकारमें उसके केशोंको चूमलिया। देवदासी लाज से मुस्कराउठी।

—६—

राजमाता इन्दिरा उद्यानमन्दिरमें विष्णुके चरणांपर सहस्र शत-दल कमलोंका धीरे-धीरे विसर्जन कररही थी। उनका हृदय पवित्र और स्निग्ध था। जब वे पूजा समाप्त करके उठीं उन्होंने देखा सूर्यमणि उदास-सी सामने खड़ी थी। राजमाताके मुखपर करुण प्रभा फैलगयी। उन्होंने कहा—‘सूर्यमणि, आज तू इतनी उदास क्यों लगती है? श्याम मेघकी

## देवदासी

तगलच्छाया आज तेरे नयनोंमें आश्रमहीना - सी क्यों काँपरही है ? आज तू निदाघके काननकी भाँति क्यों यह दीर्घ निश्वास छोड़रही है ? सिकता पर चञ्चल क्रीड़ा करनेवाली लहरके समान तेरी स्मित आज एकदम ही कहाँ लुप्त होगयी ?

सूर्यमणिने मिर झुकालिया । राजमाताने स्नेहमें फिर कहा—  
‘महाकविकी तनयाको ऐसी कौन सी पीड़ा व्याकुल करउठी है ? बोल बेटी !’

सूर्यमणिने कहा—‘कुछ नहीं माता, ऐसे ही आज कुछ चित्तमें अनबूझ-सी ग्लानि छागयी थी ।’

राजमाता चुप होगयीं । उन्हें याद आया एक दिन वहभी सिन्धु-नादके प्रेममें ऐसी ही व्याकुल होउठीं थीं । आज बीस वर्ष बीतगये । वह अब चालीस वर्षकी थीं । सिन्धुनाद पचाससे ऊपर था ।

उन्होंने मन-ही-मन अपने उस पापको भूलनेकेलिए नारायणका स्मरण किया । हृदय निर्मल होगया । आज वं राजमाता थीं । उनके पवित्र आचरणोंपर दक्षिणापथको गर्व होसकता था । उनके पतिने अपार विक्रम से चोलराजके दाँत खट्टे करदिये थे । सम्राट् सिंहविष्णुने तभीसे विधवा को अपने संगक्षणमें लेलिया था । उन्होंने कहा—‘सूर्यमणि, तेरा विवाह कबका निश्चित हुआ है ?’

सूर्यमणिने मुँह फेरकर उत्तर दिया—‘बसन्त पञ्चमोको’—और वह वहाँसे चलीगयी ।

एक दासीने झुककर कहा—‘महाकवि आये हैं देवी !’

‘महाकवि !’ राजमाताने विस्मयसे सिर उठाकर पूछा ।

‘हाँ देवी !’ दासीने सिर झुकाकर उत्तर दिया ।

‘उनको उद्यानमें ही लेआओ ।’

दासी चलीगयी । राजमाता शङ्कित होकर इधर उधर घूमनेलगीं ।

## देवदासी

उनका हृदय भीतर-ही-भीतर काँप उठा। आज वह उस व्यक्तिको बीस वर्ष बाद फिर देखेंगी जिसकी स्मृति भी उनके जीवनका एक महान् पाप है।

इसी समय वृद्ध सिन्धुनादने दासीके साथ प्रवेश किया। राजमाता इन्दिराने उन्हें आगे बढ़कर स्वागत दिया। एक सङ्गमर्मरकी चौकीपर सिन्धुनाद बैठ गये। दासी चली गयी। राजमाताने दृष्टि उठाकर देखा और फिर उनका शीश झुक गया। सिन्धुनादके नयनोंमें आज वही चमक थी जो बीस वर्ष पहले उनके सर्वनाशका कारण बन गयी थी। उन्होंने सारंग-पाणिका मन-ही-मन फिर स्मरण किया और कहा—‘कवि, आज आपने कैसे कष्ट किया?’

सिन्धुनादने धारे-धीरे कहना प्रारम्भ किया—‘एक दिन अनेक वर्ष पहले हम तुम इसी उद्यानमें अपना सब खो बैठे थे। किन्तु उस दिन भी तुमने मुझे अपना सबकुछ दिया था। आज मैं फिर तुमसे तुम्हारा सबकुछ माँगने आया हूँ।’

राजमाताने कहा—‘कवि, मैं कुछभी नहीं समझी। तुम मुझसे क्या लेना चाहते हो? सूर्यमणिकेलिए मैंने स्वयं धनञ्जय जैसा उपयुक्त वर खोज दिया है फिर और तुम मुझसे क्या माँगना चाहते हो?’

सिन्धुनादने कहा—‘देवी, धनञ्जय एक देवदासीकी ओर आकृष्ट है। वह सूर्यमणिकी उपेक्षा कर रहा है।’

राजमाता निष्प्रभ हँसी हँस उठीं। उन्होंने कहा—‘तो इतने मर्महत क्यों हो कवि! एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे?’

‘नहीं देवी आज मैं सभी कुछ सुनूँगा।’

‘तो सिन्धुनाद’, राजमाताने कहा—‘देवसेवाकेलिए अर्पित इन सहस्रों बालिकाओंके जीवनमें और एक साधारण गणिकाके जीवनमें भेद ही क्या है? साम्राज्यका धर्म भलेही इसे स्वीकार न करे, किन्तु जिन

## देवदासी

सामन्तोंके यहाँ नगरकी प्रजाकी ललनाएँ कुछ दिन दामी बनने आती हैं और अपने यौवनकी भेंट देकर लौटजाती हैं उन सामन्तोंके यहाँ क्या देवदासियाँ वेश्या ही नहीं होतीं ? क्षमा करो कवि, दिनमें वे देवसेवा करती हैं, रातको छिपकर पुरुष-सेवा ! कवि, यौवन कभीभी सत्यथपर नहीं चलसकता । उसकी ठोकरसे विक्षत उङ्गलियोंका रक्त सदाकेलिए पथपर छूटजाता है । फिर तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों ? कौन है वह देवदासी जो धनञ्जयके रूपकी अवहेलना करसकेगी ? कौन है वह साधारण नर्तकी जो धनञ्जयके बल और यशके अङ्कमें सबकुछ खोल न देगी ? दो दिनकी यह भूख मिटालेने दो उन्हें । जब हमारा समय था तब हम भी तो पीछे नहीं हटे । धनञ्जयका यह लोभ एक आलिङ्गनमें प्रवाहित होजायगा । और पुरुषकेलिए तो कोई पवित्रता नहीं, वह तो अनेक स्त्रियोंमें मत्त गजगजकी भाँति क्रीड़ा करसकता है । वसन्त-पञ्चमीको यदि वह सूर्यमणिके साथ अग्निकी प्रदक्षिणा न करे, पुजारी फिरसे पुरुषस्य भाग्यका उन्माद न गुँजादे तो आकर इस पापिनीसे जो मन आये कहना—जो विवाहके पहले माता होचुकी थी किन्तु जिसके छलसे आजभी साम्राज्य उसकी पवित्रताके सम्मुख वैदेही और अनुसूयाको तुच्छ समझनेलगा है । बोलो सिन्धुनाद, नारीका मोल ही क्या है ? पुरुषोंके हाथोंमें खेलनेवाली कठपुतली : पुरुष भूमि-पर मारता है वह आकाशको चूमनेका प्रयत्न करती है । यही तो है सब से बड़ी दासी गृहस्वामिनीका रूप—जिसकी सत्ता अपने आपमें कुछ नहीं !'

‘देवी !’ सिन्धुनादने लुब्ध होकर कहा—‘बीस वर्ष पहले मैंने कहा था मर्यादाओंका संकोच जीवनकी वास्तविकता नहीं है । आओ हम-तुम इस देशको छोड़कर कहीं चलेजाँय । किन्तु तुमने स्वीकार नहीं किया ।’

‘लेकिन कवि’, राजमाताने कहा—‘पाप तो मिटगया, पापकी स्मृति अवश्य हृदयमें चुभती है । किन्तु कभी-कभी जब तुम्हारी कविता पढ़ती हूँ तब लगता है कि वह पाप नहीं था, यह परवश जीवन सबसे बड़ा पाप है ।’

## देवदासी

‘पाप ! देवी’—सिन्धुनादने कहा— ‘मेरे-तुम्हारे जीवनका पाप ही आज फिर इस समस्त वैभवको भस्म करदेना चाहता है । मैं इसीसे काँप रहा हूँ । तुम देवदासीको साधारण वेश्या कहनेतकमें नहीं भिन्नकी, तो सुनो कि जिस साधारण नर्तकीकी पवित्रताको रूंदते देखकर भी तुम्हारा गर्व कुण्ठित नहीं होता वह तुम्हारी औरस पुत्री है । सूर्यमणि तुम्हारे प्रेमी की पुत्री है, किन्तु देवदासी रुक्मिणी तुम्हारी पुत्री है, तुम्हारे यौवन-तरु का प्रथम पुष्प है, तुम्हारे जीवन-सागरमें प्रतिबिम्बित होनेवाली प्रथम बालारुणकी दीप्ति है ।’

राजमाताने काँपतेहुए कहा—‘किन्तु रत्नगिरिने तो मुझसे कहा था वह मरचुकी है ।’

‘रत्नगिरि नहीं जानता था कि एक दिन बलशाली साम्राज्यके एक विशाल स्तम्भ सेनापतिका पुत्र उसके पीछे व्याकुल हो उठेगा । सहस्रों देव-दासियोंके बीच उसने उसे छिपादिया था । किन्तु यदि धनञ्जय उसकी पवित्रताको अपनी उच्छृङ्खलतामें विध्वस्त करेगा रत्नगिरि उसे कभी भी नहीं सहसकेगा । उसने कठोर तपसे अपना जीवन बिताया है । उसने दूसरोंको भूलोंको सरल चित्तसे क्षमाकिया है । उसे रुक्मिणीसे पुत्राका-सा स्नेह हो गया है । जिसने आजन्म अखण्ड स्फटिक जैसा धवल ब्रह्मतेजस अपने चारों ओर प्रकाशित किया है वह क्रोधसे पल्लव साम्राज्यको खण्ड-खण्ड करदेगा । राजमाता, वह वैभव और सुखकी इन दीवारोंकी नींवमें पलते पापको समूल उखाड़कर फेंकदेगा । उसके दुर्वासाके-से अग्निक्रोधको ठण्डा करसके ऐसा साहस, ऐसी पवित्रता जिसमें है ? प्रजा क्या कहेगी ? देवताकी पवित्र सम्पत्तिपर वह कभी पदाघात नहीं सह सकेगा । राजमाता, मेरा मन भय से काँप उठता है ।’

राजमाता सिहरकर खड़ी होगयी । उन्होंने कहा—‘कवि, चलो । मैं रत्नगिरीसे मिलना चाहती हूँ । देवदासी मेरी पुत्री है । उसे मैं अपने

## देवदासी

पास लेआऊँगी। वह मेरे शरीरका सञ्चय है। रत्नगिरि माताकी आज्ञाकी उपेक्षा नहीं करेगा। मेरे वक्षस्थलमें एक स्नेह काँपरहा है। मेरी पुत्री भुवन-सुन्दरी है ? वह मेरी है ? मैं उसे देखना चाहती हूँ कवि !'

सिन्धुनाद उठ खड़ेहुए। उन्होंने कहा—'रत्नगिरि पाषाण है देवी ! उमके हृदयमें एक सोता है और वह केवल देवदासी रुक्मिणीकेलिए है। वह उसकी पवित्रतापर मुग्ध है। जिस दिन उसे उसमें अपवित्रताकी गन्ध आयेगी वह अपने हाथसे उसका वध करके देव-प्रतिमाके चरणोंपर उसे समर्पित करके आत्मघात करलेगा। आत्मघातका पाप भी उसके सामने देवताके प्रति विश्वासघातकी तुलनामें कुछ नहीं। वह कठोर तपस्वी है। ममताके भूठे आवरणसे उसको आँखें कभी नहीं चौंधती। आज जो माता बनकर जा रही हो वह तुम्हारे मातृस्नेहको ठुकरादेगा। वह पूछेगा, कहाँ था यह प्रेम उस दिन जब सद्यःजात शिशुको स्तनसे लगानेके स्थानपर तुमने रातोंरात बाहर कर दिया था। एक राजकुमारीको तुमने पाप बना दिया और जब मैंने पाप को भगवानकी छाया बना दिया है तुम फिर उसे अपवित्र करना चाहती हो ?'

राजमाताने कहा— 'फिर क्या होगा कवि ?'

सिन्धुनादने कहा—'रथ बाहर खड़ा है देवी, चलिए।'।

राजमाताने आवाज़ दी—'नीला !'

दासीने आकर शीश झुकाया।

राजमाताने कहा—'शीघ्रही रथ तैयार कराओ।'।

'जो आज्ञा', कहकर दासी चलीगयी।

थोड़ी देर बाद राजमार्गपर दो बहुमूल्य रथ दौड़नेलगे। एकपर महाकवि थे, दूसरेपर राजमाता। रथ राजमन्दिरके बाहर रुकगये। दोनों उतरपड़े।

जब वे भीतर पहुँचे उन्होंने देखा रत्नगिरि सूर्यमणि के सिरपर हाथ रख

## देवदासी

कर कहरहा है—‘पुत्री, यह संसार अत्यन्त कुटिल है। सत्यका उन्मीलन आज के संसारमें प्रलयका सूत्रपात होजायेगा। मैं तुझे कुछभी बताना नहीं चाहता। किन्तु तू पवित्र है। तेरी पवित्रताकी रक्षा करना, तुझे सत्यथपर चलाना, तेरे जीवनको श्रेष्ठ और मनोहर बनाना मेरा कर्तव्य है। मैं तेरी सदा सहायता करूँगा। तेरे सुखोंकेलिए मैं कुछभी उठा नहीं रखूँगा। तुझे डरनेका कोई कारण नहीं। धनञ्जयको लाचार होकर तुझसे प्रेम ही नहीं, पवित्र परिणय करना होगा। महोत्सवके बाद मैं देवदासी रुक्मिणीको लेकर काशी चला जाऊँगा। मैं तुझे अपने ब्राह्मणत्वकी साक्षी देकर यह शपथ करता हूँ।’

राजमाताने दौड़कर रोतेहुए पुजारीके चरण पकड़लिये। सिन्धुनाद गद्गदसे रोनेलगे। सूर्यमणि कुछभी नहीं समझी।

अविचलित स्वरसे रत्नगिरिने कहा—‘परसों राजमाता ! परसों कवि ! कल महोत्सव है। अन्तिम बार कल मैं कामाक्षीकी अपने हाथोंसे पूजा करूँगा। कल मैं अपने जीवनके सारे पापोंकेलिए समस्त शक्तिसे देवताके चरणोंपर क्षमा माँगूँगा। मैं जीवनकी इस लुकाछिपीसे ऊबगया हूँ कवि ! मैं कहीं दूर चलाजाना चाहता हूँ। अपराधका सबसे बड़ा प्रतिदान ब्राह्मण की क्षमा है। ब्राह्मण वह नहीं है जो अपनी पवित्रताकी स्वर्ण और राजमद के सामने बलि देदे, ब्राह्मण वह है जो पापको पुण्य बनादे, पुण्यको मात्ता नारायण बनादे। उठो राजमाता, उठो ! राजमाताको यदि एक पुजारी के चरणोंपर लोग देखेंगे तो विस्मय करेंगे।’

राजमाताके मुखसे निकला—‘तुम मनुष्य नहीं हो रत्नगिरि ! तुम देवता हो !’

रत्नगिरिने कहा—‘नहीं राजमाता ! मैं केवल देवताका एक पुजारी-मात्र हूँ।’

सूर्यमणि आश्चर्य-चकित-सी देखतीरही। पुजारी मुस्करारहा था।

राजमन्दिरकी शोभा आज अनुपम थी। द्वार-द्वापर आम्रपल्लव बाँधेगये थे। स्थान-स्थानपर घट स्थापित करके केलेके मांमगर्भा वृक्ष लगायेगये थे। ममस्त मन्दिर गन्धसे सुवासित था। सम्राट् सिंहविष्णु आज अपने पूरे वैभवके साथ आये थे। एक ऊँचे मण्डपमें उनका स्वर्णसिंहासन दमकरहा था। कुमारपादीय युवराजोंके बाद यथायोग्य आसनोंपर सामन्त-गण आकर बैठरहे थे। कुलीन स्त्रियाँ एक ओर एकत्रित होरही थीं। राजकुमार महेन्द्रवर्मा चुपचाप अपने आमनपर बैठे आते जाते मनुष्योको देखरहे थे। श्यामा सुन्दरियोंकी किलकारियाँ गवाक्षोंमेंसे झङ्कारती वायुके साथ बाहर निकलजातीं और उनके अङ्गचालनपर विभिन्न आभूषणोंकी मधुर ध्वनि फूट निकलती। योद्धाओंके भारी चरणोंसे आहत चमकती भूमि विक्षुब्ध होउठती और उनके हास्य-तरल स्वरोंमें मादकता विलोल छाया बनकर प्रभासे दीप्त दन्त पंक्तियोंमें छिपजाती। मेखलाओंकी मंदिर-मंदिर क्वणन ध्वनि यौवनकी द्रिमिक-द्रिमिक हुंकार बनकर चन्दन-लेपित स्तनोंके उभारके डुलनपर ताल देरही थी।

एक विगट् स्तम्भके पीछे देवदामी रुक्मिणी प्रतीक्षा कररही थी। रङ्गभद्र पास आगया। देवदामीने कहा—‘नृत्यके बाद मैं भीतर जाकर पहले वस्त्र बदलूंगी फिर पुष्करिणीके पास जाऊँगी। तुम प्रायः एक प्रहरके बाद वहाँ पहुँचजाना। क्या सब तैयार हैं?’

रङ्गभद्रने धीरेसे कहा—‘तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं देवी! पेलार नदीपर श्रेष्ठिरङ्गभद्रके अमूल्य वस्तुओंसे भरे चौबीस पोत खड़े हैं। बस हमारे पहुँचनेका विलम्ब है। कल हम स्वतन्त्र होंगे।’

‘अच्छा, अब मैं जाती हूँ।’ और वह भीतर चलीगयी। रङ्गभद्र कुछ देर वहीं खड़ा रहा और फिर भीड़में मिलगया। प्रसाधन प्रायः समाप्त हो

## देवदासी

चुका था। बाहर वाद्य आदि लिये सब स्थान सज्जित करके गायक आगये थे। नृत्य प्रारम्भ होनेवाला था। सब सामनेके पटकी ओर देख रहे थे। धीरे-धीरे यवनिका उठने लगी। जनसमुदाय स्तब्ध होकर देखने लगा।

अनन्य सुन्दरी देवदासीको देखकर सबके नयन चकाचौंध हो गये। वह साक्षात् उर्वशी-सी अङ्ग वालन कग्गही थी। मृदंगका निर्घोष प्रतिध्वनित हो उठा। नर्तकीकी नूपुग्धनिका मधुर प्रवाह सुनकर सभा चित्र-लिंगित-सी देखती रही। आज वह अद्भुत नृत्य कर रही थी। उसके अङ्ग-अङ्ग में मदन हुंकार रहा था, रति-कोमल कण्ठसे अपना अजस्र रूप बहाये दे रही थी। उसके प्रवालसे अधरोपर उन्मादकी मोहक गन्ध तड़प रही थी। उसके विशाल नितम्बोंको देखकर महादेवका सहस्रां वर्षोंका तप आज हाथ खोलकर चिल्ला उठा था।

एकाएक नूपुर मिलकर बज उठे। नृत्य तीव्र गतिमय हो गया। सभा स्तम्भित-सी बैठी रह गयी। उन्होंने देवदासीको देखा जैसे प्रलयके अनन्तर वसुधरा बाहर आ रही थी। मृगमदका टीका उसके स्निग्ध वर्णपर स्वर्णकी भाँति दमकर रहा था।

आज नृत्यमें विभोर वह हीरककी किरन उस मणिकुट्टिम रङ्गमञ्च पर ऐसे डोल रही थी जैसे शिवके ललाटपर चन्द्रकी स्निग्ध रश्मि कैलाशके शिखरोंपर आलोड़ित हो रही हो, जैसे वीणापर उँगलियाँ द्रुतगतिसे झंकार-मुखर होकर तन्मय होगयी हों! उसका उन्नत वक्षस्थल यौवनका अपराजित गर्व बनकर, अपनी पीवर मांसल सुकोमलतामें चन्दनसे लिप्त ऐमा लग रहा था ज्यों युगचन्द्रपर चाँदनी बार-बार झूम-झूमकर अपने आपको भूलजाती हो। वह इस प्रकार अपनी मादकतामें अपने आप खो गयी जैसे मन्दाकिनीमें परिमल खाकर कलकण्ठ-निनादित कूजनमें राजहंसिनी स्वयं आपको भूलकर मृदुल लहरियोंपर अपने रेशम सदृश पंखोंको खोलकर क्रीड़ा करने लगती है। क्षणभरको प्रतीत होने लगा मानों नर्तकीके साथ

## देवदासी

समस्त वसुमती आज स्वर्गकी ओर उड़जायेगी और भारालस वासनाका यह मंदिर उत्साह वारुणीकी भूममें अपना अनन्त विसर्जन करदेगा ।

नृत्य रुकगया। सब अविश्वाससे चारोंओर देखउठे। सम्राट् सिंह-विष्णुने गद्गद होकर कहा—‘पुजारी, तुम धन्य हो। देवदासी तुम्हारी पुत्री है ?’

‘हाँ, सम्राट् !’ पुजारीने गर्वसे सिर झुकालिया ।

राजमाता इन्दिरा और महाकवि सिन्धुनादके नयनोंमें आनन्दके अश्रु छागये। सूर्यमणि भयार्त-सी मौन बैठीरही। देवदासीने एक बार देवताको झुककर प्रणाम किया और गर्वसे सिर उठालिया। उस समय उसके मुखपर स्वर्गीय आभा खेलउठी। रङ्गभद्र हर्षित होकर देखतारहा। धनञ्जय अपने स्थानसे उठगया और अन्धकारमें कहीं खोगया।

सम्राट्ने फिर कहा—‘कवि, रुक्मिणीपर पल्लवको अभिमान है। क्या तुम्हारे हृदयमें इस रूपको देखकर सरस्वतीका सङ्गीत नहीं उमड़ता?’

सिन्धुनादने कहा—‘मेरा कवित्व रूपकी इस अपार राशिको देखकर विस्तुब्ध होउठा है। मैं अममर्थ हूँ।’

मन्थरगतिसे चलती देवदासीने प्राङ्गण पार करके, बाह्य परिक्रमा को लाँघकर, भीतरी परिक्रमामें पाँव रखा। उसी समय उसने सुना—‘सुन्दरी!’

उसके पाँव ठिठकगये। सामनेही धनञ्जय खड़ा था। उसके नयनों से वासनाने अवगुण्ठन हटादिया था। वह लोलुप दृष्टिसे उसकी ओर देखरहा था।

देवदासीने कहा—‘क्या है सेनापति तनय?’ धनञ्जय मन्त्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। देवदासीने फिर कहा—‘क्या है कुमार? आप क्यों मुझे निष्कारण घूररहे हैं?’

धनञ्जयने उच्छ्वसित स्वरमें कहा—‘देवी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!’

## देवदासी

‘धनञ्जय !’ देवदासी हुंकार उठी। बाहर प्राङ्गणमें उस समय कोई कलकण्ठसे प्रेमका मनोहर और करुण गीत गारहा था। धनञ्जय फिर भी देखतारहा। देवदासीने आगे चलनेको पग उठाया। नूपुर बजउठा। धनञ्जयको लगा जैसे रतिका विजयी डमरु आकाश, वसुन्धरा और पाताल में एक घोष भरताहुआ गूँजउठा। वह पागल होउठा। और धनञ्जयने आगे बढ़कर उसके कन्धोंको पकड़लिया। देवदासी क्रुद्ध-सी चिल्लाउठी—‘धनञ्जय तुम दुस्साहम कर रहे हो।’

धनञ्जय व्याकुल होकर बोला—‘रुक्मिणी, तुम भूलरही हो। मैं तुम्हारी पवित्रतासे धोखा नहीं खा सकता। मैंने तुम्हें उस युवकसे छिपकर बातें करते देखा है। मेरे हृदयमें आग जलरही है। आज तुम्हारे नृत्यने हविष्य डालकर उसे धधकादिया है। सुन्दरी आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।’

देवदासी काँपउठी। उसने कहा—‘तुम पागल होगये हो धनञ्जय ! मैं तुमसे भीख माँगती हूँ। मुझे छोड़ दो।’

किन्तु धनञ्जय हँस उठा। उसने उसे खींचकर अपनी छातीसे लगाकर उसके सुन्दर मुँहको चूमलिया। देवदासी क्रोधसे उसके मुँहपर हाथसे आघात करउठी। विच्युब्ध धनञ्जयको एक धक्का मारकर भागने लगी। धनञ्जय उसे पीछेसे पकड़कर चिल्लाउठा—‘मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा स्त्री ! आज तुम्हें मेरी प्यास बुझानी ही होगी। धनञ्जय आज तक कभी स्त्रीसे अपमानित नहीं हुआ।’

‘नहीं ! नहीं ! नीच पशु ! मैं चिल्ला-चिल्लाकर सम्राट्को बुला दूँगी, तू मुझपर बलात्कार नहीं करसकता ...।’

धनञ्जयने हँसकर कहा—‘तो तू चिल्लाकर ही देखले।’

देवदासीके मुँह खोलतेही उसकी कठोर उङ्गलियोंने उसकी कोमल ग्रीवाको कसलिया और वह दाबतेहुए कहनेलगा—‘चिल्ला ! जितनी शक्ति हो उतना चिल्ला चिल्लाकर आकाश सिरपर उठाले। देखें कौन

## देवदासी

तेरी रक्षाकेलिए आता है ।’

धनञ्जयने उन्मादमें भरकर पूरी शक्तिसे उसका गला दबादिया । अपने बोलनेमें वह रुक्मिणीका आर्त्तस्वर नहीं सुनसका । देवदासीका शरीर भूलगया । धनञ्जयने अपने हाथ खींचलिये । देवदासीका मृत-शरीर पृथ्वी-पर धड़ामसे गिरगया । धनञ्जय व्याकुल-सा देखतारहा । भयसे उसका शरीर जड़ होगया । यह उसने क्या किया ?

इसी समय एक कठोर स्वर सुनायी दिया—‘धनञ्जय, तूने स्त्रीकी हत्या की है ? क्योंकि वह तेरे प्रलोभनमें नहीं फँससकी ? कुलांगार !’

धनञ्जय काँपउठा । उसने मुड़कर देखा । पुजारी रत्नगिरि द्वार पर खड़ा था । धनञ्जय लड़खड़ा उठा । रत्नगिरिने हँसकर कहा—‘भूल गया अपना समस्त बल और वैभवके अत्याचारका बर्बर रूप ? स्त्रीकी हत्या करके भागना चाहता है ? तू एक देवदासीकी पवित्रताको कलुषित करना चाहता था क्योंकि तुम्हें सेनापतिका पुत्र होनेका गर्व था ? तेरी शक्तिके सामने देवताका अपमान एक साधारण वस्तु है ? तेरे बलके सामने एक पवित्र नारीका सतीत्व कुछभी नहीं ? धिक्कार है ऐसे वैभवको, धिक्कार है ऐसे साम्राज्यको ! ब्राह्मण तुम्हें शाप देता है……’

किन्तु एकाएक पुजारीकी जिह्वा रुकगयी ! मस्तिष्कमें तीन बार कुछ चोट करउठा । पुजारीने कहा—‘मैं सूर्यमणिको वचन दे चुका हूँ पापी । जा भागजा । अन्यथा अभी यहाँ भीड़ होजायगी और तू पकड़ा जायगा । तूने अनेक हृदयोंका सर्वनाश करदिया है । किन्तु तेरेलिए जैसे युद्धभूमिमें यशकेलिए अनेक हत्या करना है वैसेही एक यहभी सही । वहाँ तू अनेक स्त्रियोंको धन और भूमिकेलिए विधवा बनाता, यहाँ तूने ब्राह्मण और देवताकी सम्पत्तिपर पदाघात किया है ।’

धनञ्जय वज्राहत-सा खड़ा रहा । पुजारीने उसे धकेलकर बाहर कर दिया । उसने पास जाकर देखा देवदासीकी आँखें उलटगयीं थीं, जिह्वा

## देवदार्पा

बाहर निकल आया था। धनञ्जयने पीछेसे उसका गला घोटदिया था। तभी उसके नयनोंमें कोई चिन्ह नहीं था।

कैमा कठोर होगा उसका हृदय जो इस फूल-सी बालिकाकी हत्या करसका? सूर्यमणि एक हत्यारेसे विवाह करेगी? और वह देखता रहेगा? किन्तु राजमाताका मान, मिन्धुनादकी उज्ज्वल देदीप्यमान कीर्ति!

बृद्ध शवपर गेउठा। उसने कहा—‘उन्हें क्षमा करदे रुक्मिणी! सिन्धुनाद तेरा पिता है, राजमाता इन्दिरा तेरी माता है, सूर्यमणि तेरे पिताकी पुत्री है और मैं सूर्यमणिको वचन देचुका हूँ। तू बिल्कुल पवित्र है आकाशकी शब्द पूर्णिमाकी ज्योत्स्नासे भी अधिक श्वेत! उन्हें क्षमा कर पुत्री! मैंने तुझे बचपनसे पाला था, अपना वैराग्य मैंने तेरे कारण त्यागदिया। क्षमा कर रुक्मिणी! ब्राह्मण, देवता और देवदासीको सबकुछ खोकर भी क्षमा करना चाहिए पुत्री!’

उसने देवदासीके शरीरको स्पर्श करके ऊपर हाथ करके कहा—‘देवता, नारायण, कामाक्षी! देवदासीको स्वर्गमें बुलालो। वह बिल्कुल पवित्र है।’ पुजारी उठा। उसने अपने आँसू पोछलिये और बाहर निकल आया। बाहर कोई वीणा बजारहा था। रत्नगिग्निने कहा—‘मैंने देवदासी रुक्मिणीकी हत्या की है। मैंने देवदामी रुक्मिणीको गला घोटकर मार-डाला है। भीतरी परिक्रमामें उसका शव पड़ा है।’

गीत रुक गया। वीणाकी सिसक बन्द होगयी। महाम्राट् सिंहविष्णु हठात् उठ खड़े हुए। उनके उठते ही समस्त सभा हड़बड़ाकर खड़ी हो गयीं। चारो ओर निस्तब्धता छागयी। प्राङ्गणका बिल्लौरका मध्यभाग एक उदासीनता और किंकर्तव्य-विमूढ़तासे स्तब्ध होगया। महोत्सव रुकगया। स्त्रियोंके आभूषण चुप होगये, पुरुषोंके नयन चिस्मयसे खुल गये! प्राचीन राजमन्दिरकी विशाल प्राचीरें विजृम्भ होगयीं।

कुछ देरतक सब चुपचाप देखतेरहे। सम्राट्ने कहा—‘कौन ?

वही जिसने अभी-अभी अप्सराओंका-सा नृत्य किया था ?

‘हाँ, वही, सम्राट् !’ रत्नगिरिने दूरसे उत्तर दिया और प्राङ्गणकी ओर बढ़चला ।

चारों ओर कोलाहल मच उठा—‘पुजारी रत्नगिरिने अपनी पुत्री की हत्या करदी !’ ‘ब्राह्मण होकर उसने पवित्र देवताकी सम्पत्तिको मार डाला !’ ‘जन्मसे जिसे उसने पाला उसीपर हाथ उठाया ?’ ‘उमने निरपराधिनी स्त्रीका ध्वंस करदिया ?’ ‘ब्राह्मणने आज यह घोर पाप किया !’ ‘रत्नगिरिने पल्लवके गौरव-वृक्षको फल और फूलोंसे लदा देखकर भी कुठार चलादिया ?’ प्राङ्गणमें आकर अकेला रत्नगिरि सुनता रहा । उसको चारों ओरसे सम्राट्, राजकुमार, सामन्तों, नागरिकों, कुलीन ललनाओं और जनसमुदायने घेरलिया । सब कुछ-न-कुछ उसके विरुद्ध कह रहे थे । सम्राट् कुछ सोच रहे थे । किसीको भी विश्वास न था । पुजारी रत्नगिरि साम्राज्य का सबसे पवित्र ब्राह्मण था । चारों ओरसे प्रश्नोंकी भरमार होतीरही । जनसमुदाय विलुब्ध होकर उसे धिक्कार रहा था । सामन्तोंकी भृकुटि खिंच गयी थी । सब उसे क्रुद्ध दृष्टिसे, घृणासे व्याकुल होकर देख रहे थे, किन्तु पुजारी रत्नगिरि निर्भीक खड़ा रहा । रङ्गभद्रने उसके पास जाकर कहा — ‘पुजारी ! तुमने रुक्मिणीको मार डाला ! तुमने उसके मनुष्य होनेके प्रयत्न को देखकर उसका बध करदिया ? ब्राह्मण ! तुम युग-युग तक गौरवकी यातना भोगोगे । तुमने एक मनुष्यको पशु बनाना चाहा था, और जब उसने मनुष्य होनेका प्रयत्न किया तुमने उसे कुचल दिया ? क्योंकि वह मेरे साथ भागनेवाली थी ?’ राजकुमार महेन्द्रवर्माने आगे बढ़कर कहा— ‘ब्राह्मण होनेसे तुम अवध्य हो पुजारी । किन्तु ब्राह्मण आजतक पशुबलि देते थे तुमने नरमेध किया है । मैं आज उस धर्मके नामपर पूछता हूँ क्या वैष्णव-भक्तिमें पिता पुत्रीकी हत्या करके नहीं मर सकता ?’ रङ्गभद्रकी ओर दिखाकर सम्राट् सिंहविष्णुने कहा—‘यदि यह युवक सत्य कहता है

## देवदामी

तो पुजारीका कोई दोष नहीं। उसने देवताकी सम्पत्तिको अपवित्र होते देखकर उसका ध्वंस करके पवित्र भागवत धर्मकी रक्षा करदी। रत्नगिरि ! बोलो, कहो, देवदासी अनाचारिणी थी ?

रत्नगिरिने अविचलित स्वरसे कहा—‘यह युवक झूठ बोलता है। मैंने इसे कभीभी उससे बात करते नहीं देखा। देवदासी सदा अकलुष, पवित्र, और पुण्यसे भी मधुर थी। उसकी आत्मा प्रभातके नीहारकी भाँति उज्ज्वल कलमषहीन थी।’

सम्राट् सिंहविष्णुने क्रोधसे कहा—‘तब तू ब्राह्मण नहीं है रत्नगिरि, तू चाण्डाल है। अपनी पुत्रीको निष्कारण मारकर तू पत्थरकी तरह मेरे सामने खड़ा है। राजकुमार महेन्द्रवर्मा सच कहता है कि ब्राह्मणको अवध्य कहना धर्मका सबसे बड़ा दुराचार है।’

रत्नगिरिने कहा—‘सम्राट्, रत्नगिरि पुत्रीकी हत्या करके अब ब्राह्मण नहीं रहा। वह हत्यारा है।’

इसी समय राजमाता धीरे-धीरे रत्नगिरिके सम्मुख आखड़ी हुई। उनकी आँखोंमें अश्रु छारहे थे जिनमें वात्सल्य और भयमिश्रित घृणा चमक रही थी। उन्होंने कहा—‘पुजारी, सच कहो, पुत्रीको तुमने ही मारा है?’

पुजारीने कुछ जवाब नहीं दिया। राजमाता फूट-फूटकर रोउठी। उनका हृदय टुकड़े-टुकड़े होरहा था। उन्होंने कहा—‘‘तुम रक्षक नहीं हो, तुम हिंस्र पशु हो। जन्मसे तुमने उसे पाला, फिर क्या इसी अन्तका तुमने उसके लिये निर्णय किया था ? पैदा होतेही क्यों न मार दिया पिशाच ? स्वर्गकी उस अमूल्य पवित्र प्रतिमाका तुमने अन्त करदिया, तुम्हें क्या मालूम मेरे हृदयकी वेदना.....’

उनका कण्ठ रूँधगया। पुजारीने उनकी ओर देखा। वह रोती रोती पीछे हटगयीं। आगे आकर कवि सिन्धुनादने कहा—‘पुजारी, यह

## देवदामी

तुमने क्या किया ? सच कहो, तुमने यह हत्या क्यों की ? तुम तो उसे लेकर काशी जा रहे थे ! रत्नगिरि, तुमने क्या यही मित्रता दिखायी है ? आजीवन पवित्र रहे हो तुम ? तुमने स्त्रीहत्या ही नहीं की, तुमने देवदासीकी हत्या की है ! ब्राह्मण होनेके कारण तुम्हारी हत्या नहीं की जा सकती, क्या इसीसे तुमने ऐसा किया ? आज तक तो तुमने कभी अपने अधिकारोंका दुरुपयोग नहीं किया ? क्या देवदासी पापिनी थी ?

उस समय रत्नगिरिने दृढ़ स्वरसे कहा—‘नहीं कवि !’

सिन्धुनादकी आँखोंमें आँसू छागये । उसने धीरेसे कहा—‘तुमने सबसे बड़ा पाप किया है । तुमने अनेक हृदयोंपर टाँकर मागकर चूर कर दिया है । तुम मेरे मित्र हो । रत्नगिरि, क्या तुम अब जीवन-भर अपने इस भीषण पापकी ज्वालामें जीवित ही नहीं मर जाओगे ? कैसे सह सकोगे यह सब ब्राह्मण ? किन्तु तुम अब सबकुछ सह सकोगे वज्र-हृदय ! तुमने हत्या की है । तुमने विश्वासघात किया है । तुमने इस वृद्धका हृदय बिल्कुल ध्वस्त कर दिया है । क्या चिताकी भस्मको अपने पापी नयनोंसे घूर रहे हो ? रत्नगिरि यह तुमने क्या किया !’

पुजारीने नीचेका हाँठ दाँतसे काटलिया और चुपचाप खड़ा रहा ।

सम्राट् सिंहविष्णुने कहा—‘ब्राह्मणको राजमन्दिरसे बाहर निकाल दो, उसको पल्लव साम्राज्यसे निर्वासित कर दो । मैं आज्ञा देता हूँ कि पल्लव का एकभी नागरिक, सैनिक अथवा जो कोईभी हो ब्राह्मणको एक मुट्ठी अन्न न दे, एक बूँद पानी न दे, और इसके पापसे पूर्ण मुखको देखकर चिल्ला उठे—नारायण ! नारायण !!’

समस्त समुदाय पुकार उठा—‘नारायण ! नारायण !!’

सम्राट् सिंहविष्णुने फिर कहा—‘मन्दिरको यज्ञसे पवित्र करना होगा । यहाँ ब्राह्मणके वेशमें एक चाण्डाल रहता था । इसे निकाल दो ।’

## देवदासी

रत्नगिरि धीरेसे मन्दिरके बाहर निकलगया । सहस्रों हृदय एक स्वरसे उसे धिक्कार उठे ।

—८—

उस समय मन्दिर निर्जन होचुका था । निस्तब्धता सनसना रही थी । नागरिक समुदाय अपने अपने धराकों लौटचुका था । दीप बुझचुके थे । घोर नारवता छारही थी । स्तम्भके सहारे खड़े युवककी तन्द्रा टूटगयी । वह धीरे धीरे बाहर आया और पेलार नदीकी ओर चलपड़ा ।

प्रभातका मधुर प्रकाश सिकतापर डालनेलगा । धीवरोंकी वंशी की करुण लहरियाँ सिन्धु-मिलनकेलिए अधीर ऊर्मियोंपर फहरने लगीं । सहसा युवकने पोतपर चढ़कर पुकारा — ‘कदम्ब !’ सेवकने झुककर कहा — ‘प्रभु ?’

‘हमारे पास कितने पोत हैं ?’ युवकने अविचलित स्वरसे पूछा ।

‘चौबीस, प्रभु !’ सेवकने विनीत उत्तर दिया ।

‘उनकी सम्पत्ति बाँटदो कदम्ब ! काञ्चीकी भूखी प्रजाको वह सब दान करदो ।’

‘प्रभु !’ कदम्बने विस्मयसे कहा ।

‘विस्मय न करो कदम्ब ! आज महाश्रेष्ठि रङ्गभद्र प्राणोंका व्यापार करने सिंहल जारहा है । जिस मोतीको खोजने वह महासमुद्रमें गोता मारने जारहा था, वह उसे भीषणसे भीषण समुद्रका मन्थन करकेभी अब नहीं मिल सकता ।’

‘प्रभु !’ सेवकने फिर निवेदन किया — ‘स्वामीका चित्त आज कुछ अस्थिर है ।’

‘नहीं कदम्ब ! रङ्गभद्र अब कभी विचलित नहीं होसकता । जिस

## देवदासी

धनको मैं आज एकत्रित करने जा रहा था आज उसी धन और अधिकार के मदने मुझे आमरण जीवितही जलनेका महान वरदान दिया है। रङ्गभद्र कभीभी अब काञ्चीकी अभिशप्त नगरीको नहीं लौटेगा। पल्लव साम्राज्य का यह भीषण नरमेघ आज पाषाणोंके चरणोंको अपने रक्तसे रँग चुका है। मैं इससे घृणा करता हूँ कदम्ब ! मैं इससे जी भगकर घृणा करता हूँ।'

कदम्ब चला गया। युवक थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर सहसा ही पुकार उठा—'माँझी, पोतको बहने दो।'

कठोर मांस-पेशियोंवाले नाविकोंकी पतवारोंने अथाह नदीकी लहरों को काटना प्रारम्भ किया। फेन उठकर पोतके किनारोंपर छींटे मारनेलगे। अकेला पोत सागरकी ओर बह चला। निगाधार, अनन्त जलराशिपर डगमगाता, काँपता, भयभीत होता। पाल हवास भरकर फैल गये। उज्ज्वल प्रकाश लहरोंपर भागने लगा। तोर दूर छूट गये। पोतकी गति तीव्र होने लगी।

रङ्गभद्र एक बार ज़ोरसे हँस उठा और फिर सिर थामकर अर्द्ध-मूर्छित-सा बैठ गया। वह न-जाने कौनसा मोती ढूँढने जा रहा था! चारों ओर महानदका ऊर्मिजाल अट्टहास कर उठता था और ऊर्जस्वित प्रतिध्वनि आकाशमें मँडराने लगती थी।

प्रवाहपर पोत मन्थर गतिसे बहा जा रहा था। दूर सुदूर केवल जल-राशिके अतिरिक्त आज चारों ओर कहींभी कुछ न था। क्षितिज जैसे सन्निपातमें कुछ मर्मर कर रहे थे, और रङ्गभद्र बैठा रहा, बैठा रहा, विश्रांत पराजित, विध्वस्त..... अवसादका टूटा हुआ स्तम्भ ... अभिलाषाओंकी धधकती भस्मका उन्माद..... !

## अनुवर्त्तिनी

[ १ ]

वृद्ध कौत्सुभने उद्वेलित होकर पूछा—‘अरे क्या हुआ कुछ मुझे भी तो बताओ ? अरे कोई कुछ बताता क्यों नहीं ?’

‘कौन ? कौत्सुभ भिन्नु तुम हो ?’ संघस्थविरने चलते-चलते रुक कर कहा—‘आज विजनर्तागके संघका नाम फिरसे चमक उठा है ।’

पास खड़े युवक भिन्नु अनागारिकने चिल्लाकर कहा—‘मेधावी आनन्द भिन्नु विजयी हुए हैं । उनकी अद्भुत वाक्शक्ति, प्रचुर प्रमाण, अकाट्य तर्कसे बालनाथकी समस्त योगसिद्धि ऐसे उड़गयी जैसे खरके सिरसे सींग ।’

‘आनन्द जीतगये ?’ वृद्धने गद्गद् होकर कहा—‘जीतगये आनन्द ! भगवान्, तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए ! संघस्थविर, आर्य्यसंघका नाम अमर है ।’

संघस्थविरने कहा—‘आनन्दपर संघको गर्व है भिन्नु कौत्सुभ ! वह मेरा शिष्य है । वह प्रकाण्ड मेधावी है । जिस समय आनन्द बोलने को खड़ाहुआ एक ओर वज्रयानके महासुखवादी सिद्ध, दूसरी ओर गोरक्ष के अनुयायी योगी बैठे थे । उन्होंने बहुत-कुछ कहा । सिद्धोंने प्रज्ञा और उपायको बखेरदिया । शून्य, विज्ञान और महासुखके विवेचनसे जनसभा को मन्त्रमुग्ध करदिया । ध्यानी बुद्धों, बोधिसत्त्वों, युगनद्ध स्वरूपोंसे उन्होंने सबकुछ एकदम सिरमें उतारदेना चाहा । इन पतितोंमें कुछ जो शैव हो गये हैं, उन्होंने भी बहुतकुछ प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया किन्तु न

## अनुवर्त्तिनी

सङ्गमत्तन्त्र काम आया, न साधना ही । वे केवल अशिक्षित मूर्खों का परास्त करसकते हैं । आनन्दने जब बोलना प्रारम्भ किया एकदम नीर-वता छागयी । उसने कहा—अन्तस्साधना, अन्तस्साधनाका मार्ग बाह्य-आडम्बर नहीं है । तुम शरीरको कष्ट देकर समझते हो कि आत्मा पवित्र होरही है ? तुम गुणीके स्थानपर गुणका प्रयोग न करके क्रिया व्यापारको सूक्ष्म और स्थूलमे विभाजित करनेका प्रयत्न करते हो ? भिन्नु कौत्सुभ, उस समय सभामे ऐसा कोलाहल मचा जैसे किसीने समुद्रका मन्थन कर दिया हो । आनन्द फिरभी बोलता रहा । मैंने उस वेदान्ती माधव मिश्र से भी शास्त्रार्थ करते देखा है । किन्तु नहीं, भिन्नु, वह कुछभी नहीं था । आज तो ऐसा खण्डन किया उसने कि मुझे महाप्रभुके प्रथम शिष्य आनन्द की आभा उसके चारों ओर फूटतोहुई दिखायी दी । मुझे आनन्दपर गर्व है; आर्य्यसघको कृतज्ञ होना पड़ेगा उसका । उसने आज गौतमके नाम पर कलंक नहीं आनेदिया ।’

बुद्ध कौत्सुभने आनन्दसे विह्वल होकर कहा—‘सघस्थविर, गौतम के इन बननेवाले अनुयायियोने कितने भयानक पाप किये हैं । आज जब कि सब जगहसे प्रायः हीनयान मिटगया है विजयतीराके सघमे हम अब भी पवित्र हैं । आर्य्यावर्त्तको विदेशियोने सहस्रो वर्षोसि विच्छिन्न करदिया है । विभिन्नधर्मा आज धर्मकी ओटमे अनाचार फैला रहे हैं । कहते हैं सुदूर सागरतीरपर पश्चिममें यवन विजयी होकर अब अपने धर्मका बलपूर्वक प्रचार करनेलगे हैं । उत्तरसे अनेक आभयान करके भी उनका बल अभी ठण्डा नहीं हुआ । राजपुत्र परस्पर युद्ध कर रहे हैं । गौतमको लोग भूलते जा रहे हैं । प्राचीनावीति कहकर जनसमाज सबकुछ खाता जा रहा है । आर्य्य, आर्य्यावर्त्तमे लोग एक-दूसरेको अब आर्य्य भी नहीं कहते ।

सघस्थविरने कहा—‘बुद्ध भिन्नु, गौतमका आशीर्वाद चाहिए । सबकुछ फिर प्राप्त होगा । खोयाहुआ लौट आयेगा । आज जो प्रशस्त

## अनुवर्तिनी

ललाट धीरे-धीरे उठरहा है उससे फिरसे राजा और प्रजा बौद्ध होंगे । चक्रवर्ती सम्राटोंकी छत्रछायामें आर्यावर्त्त फिर बौद्धोंका केन्द्र होजायेगा । वह देखो भिन्नु आनन्द आगया ।'

तभी आनन्दने आकर प्रणाम किया । कौत्सुभने गद्गद् होकर आशीर्वाद दिया—'वत्स, तुम्हारी सदा जय हो !'

'महापण्डित बुद्ध भिन्नुके रहते मुझे कोई भय नहीं'—आनन्दने नम्र होकर कहा ।

संघस्थविर मुस्करादिये ।

[ २ ]

उन दिनों आर्यावर्त्तकी शक्ति विभिन्न सामन्तोंके हाथमें खंड-खंड होकर उच्छृंखल होउठी थी । पश्चिमके कुछ साधू आकर अपने अनोखे उपदेश देते फिरते थे । नित्य ही गोरखपन्थी और भैरवी साधुओंका उनसे समागम होता और वे साथ बैठकर खाते, साथही मदिरा पीते, समझ न आनेवाली बातें कहते और प्रजा उनसे भयभीत होकर बात-बातमें उनके सामने सिर झुकादेती । देशमें तीन ही वर्ग प्रधान थे । एक प्रजा, दूसरा राजवंशीय समुदाय, तीसरे यह साधू जो व्यक्तिगत महानिर्वाणकी खोजमें पागल होरहे थे । भैरवीचक्रों और हठयोगियोंकी समाधियोंको लोग सुनते और श्रद्धा करते थे । दुर्दमनीय गिरि-कन्दराओंमें युवक बैठकर बलि देते, उनकी धूनीकी लपट आकाशको चूमने लगती और उस उन्मादमें वे स्त्रियोंकी योनि - पूजा करते । दर्शन और अभ्यासके इस अन्धकारमूल वितण्डावादमें आर्य्य संस्कृतिकी जड़ें हिलरही थीं । दक्षिणमें उस प्रबल शक्तिसे दिग्विजयी शङ्करका गम्भीर गर्जन उठा था कि बौद्ध धर्म लड़खड़ा गया था । यवनोके आक्रमणकी दिन-पर-दिन आशङ्का बढ़ती जा रही थी । अपार धनराशि लिये बौद्धोंके संघाराम नगरके बाहर भविष्यकी काली

## अनुवर्तिनी

छायामें काँपतेहुए अबभी कनिष्क और अशोकके भग्न स्तूपोंमें तथागतका नाममात्र दुहरालेते थे ।

विजयनीरा नदीके किनारे ऊँघताहुआ वह संघ सन्ध्याकी डूबती छायाओंमें रङ्गविरङ्गा बहुतही मनोहर-सा दीखरहा था । बाहरही विशाल फाटकपर प्रस्तरकी मूर्तियाँ समयको देख स्तब्ध होगयी थीं, मानों उन्होंने उसे निर्भय होकर काटदिया था । अघेड़ आयुके संघस्थविर बुद्धभिक्षु बाहर खड़े कुछ सोचरहे थे । उनके पासही आनन्दभिक्षु खड़ा था ।

‘बातमें उसकी कुछ सार अवश्य है आनन्द’—कहतेहुए बुद्धभिक्षु ने आनन्दकी ओर देखा ।

‘आप सोच सकते हैं ऐसा आर्य्य ? मुझे तो कुछ समझ नहीं पड़ता । वज्रयानकी यह अद्भुत पिपासा मुझे कभी मन्तुष्ट नहीं करसकी । शून्यको विभाज्य रूप देनेसे क्या हम अन्तरात्माको धोखा नहीं देते ?’—आनन्दने आकाशकी ओर देखते हुए कहा । संघस्थविर मौन रहे । आनन्द ने फिर कहा—‘देव, प्रच्छन्न बौद्धके मिथ्या प्रचारसे अनेक ब्राह्मणोंको नये-नये उपाय सूझनेलगे हैं । नगरमें एक यवन आया है जो अनेक उल्टी-सीधी बातें कहता फिरता है । वह तो सिद्धोंसे भी बढ़गया है । मैं कुछ नहीं समझ पाता ।’

उसकी उत्तेजना देखकर संघस्थविर हँसदिये । उन्होंने कहा—‘आनन्द तुम अभी युवक हो ।’

आनन्द बिल्कुल नहीं समझा । उसके सोनेके-से दमकते रङ्गपर काषायका वर्ण प्रफुल्लित होरहा था । कठोर संयमसे उसका मुख दमद-माता था जिसपर सौम्य क्षमाका आर्य्यमौन उसे बहुतही मनोहर बनादेता था । एकाएक उसने एक सुन्दरी युवतीको अपनी ओर आते देखा । आनन्दने कहा—‘देव, कोई स्त्री यहाँ आरही है ।’

## अनुवर्तिनी

संघस्थविरने देखा । स्त्रीने आकर प्रणाम किया ।

संघस्थविरने पूछा—‘शुभे, तुम कौन हो ? यहाँ किसलिए आई हो ?’

‘दीक्षा लेने आयी हूँ प्रभु । मैं विधवा हूँ’—स्त्रीने उत्तर दिया ।

‘गौतमके संघमें स्त्रियोंकी गणना अधिक होती जा रही है, आय्ये ! तुम भिक्षुणी होकर क्या करोगी ?’

‘मैं अपने वैधव्यका अन्धकार संयमके महाप्रभातमें हीरेकी तरह चमकताहुआ देखना चाहती हूँ प्रभु ।’

‘नारी !’—संघस्थविरके नयनोंमें एक कठोरता छागयी—‘तुम मुण्डित-केश अलंकारविहीन करदी जाओगी ।’

‘शिरोधार्य’

संघस्थविरने आनन्दकी ओर देखा । आनन्दका कुन्दन-सा मुख गम्भीर था । वह स्त्रीकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देख रहा था । स्त्रीका प्रस्फुटित यौवन मचल रहा था, जैसे नदी उफनकर बह जाना चाहती थी । उसके नीले दुकूलपर वह सफेद कञ्चुक कालिन्दीपर काँपते कमलोंकी भाँति था जिसे छू-छूकर समीरण अङ्गड़ाई भर रहा था । स्त्रीने आनन्दको देखकर सिर झुकालिया ।

संघस्थविरने कहा—‘वत्स आनन्द, भिक्षु कौत्सुभके पास लेजाकर इसे दीक्षा दो ।’

आनन्दने आज्ञाको सिंग झुकाकर स्वीकार कर लिया । स्त्री उसके पीछे-पीछे चलने लगी । आनन्दने मुड़कर पूछा—‘आय्ये तुम्हारा नाम ?’

स्त्रीने कहा—‘देव, मेरा नाम नन्दिनी है ।’

‘किसकी पुत्री हो ?’

‘मेरे पिता स्वर्ग चले गये । मेरा पालन मेरी माताने ही किया है ।’

## अनुवर्तिनी

किन्तु जब वे भी चलबसीं, संसारमें मेरा कोईभी सहारा नहीं रहा, तब मैं गौतमकी शरणमें आयी हूँ।’

भिन्नुकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। उसने फिर पूछा—‘आर्य्ये, क्या तुम्हारे पतिके सम्बन्धियोंने भी तुम्हें संधमें सम्मिलित होनेकी स्वीकृति देदी है?’

स्त्रीने उत्तर दिया—‘आर्य्य, नन्दिनीने अपने पतिका मुख भी नहीं देखा। जब वह छोटी थी तभी उसका विवाह एक दस वर्षके बालकके साथ कर दिया गया था। माता तब पाटलिपुत्रमें थी। एक दिन श्रेष्ठि सुदत्तके घरसे लौटते समय सुना कि मेरे पतिके घर कुछ दस्युओंने आक्रमण किया और तभी मेरे पति चले गये। कहते हैं उस दस वर्षके बालककी वहीं हत्या कर दी गयी। माँने तभीसे मुझे विधवा कहा है। उच्च कुलकी मर्यादा पालनेका मैंने अपनी माताको उसकी मृत्युशैल्यापर हाथ रखकर वचन दिया है।’

आनन्दभिन्नु विचार-मग्न होगया। जैसे उसका हृदय किसी घोर चिन्तामें डूबगया। जब दोनों भग्न स्तूपके पार सरोवरके तीरपर पहुँचे उन्होंने देखा नेत्रहीन वृद्ध कौत्सुभ कुछ गारहा था। आनन्दने सुना वह अश्वघोष के बुद्ध-गृहत्यागके महावैराग्यके गीत गारहा था। उसका हृदय एकदम शान्त होगया।

उसने प्रणाम करके कहा—‘आर्य्य, संधस्थविरने देवी नन्दिनीको प्रव्रज्या ग्रहण करनेको आपके पास भेजा है।’

वृद्धने कहा—‘कौन ? नन्दिनी ? शुभे, मेरे पास आओ।’

वृद्धने स्नेहसे कहा—‘यह केश नहीं रहेंगे, यह अलंकार नहीं रहेंगे। न चन्दन लगा सकोगी, न अङ्गराग, न अगलक्तक, न कानोंमें कुसुम खांस सकोगी, न.....’

नन्दिनीने काँपते स्वरमें कहा—‘भिन्नु, मैं तो अबभी यह सब नहीं

## अनुवर्त्तिनी

करसकती । मैं विधवा हूँ ।’

‘किन्तु मन वशमें रख सकोगी ?’

‘प्रयत्न करूँगी भगवन् !’

बुद्ध हँसा । उसने कहा—‘आर्य्ये, गौतमने कहा था कि स्त्रियाँ संघमें आकर संघकी आयु घटारही हैं, किन्तु जो भगवान् बुद्ध नहीं रोक सके वह मैं अन्धा, आँखसे ही नहीं मनसे भी, कैसे रोकसकता हूँ ? आओ, मैं तुम्हें प्रव्रज्या ग्रहण कराऊँगा । आजसे तुम अनुवर्त्तिनी हो । बुद्धं शरणं धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि !’

नन्दिनीने नम्रतासे शीश नत करलिया । आनन्द चुपचाप देखता रहा । सन्ध्याके धूमिल वसन गहरे होचुके थे ।

. [ ३ ]

आकाशमें नारंगी उजाला फैलनेलगा । उन्मत्त समीरण नन्दिनी के मुखपर बजउठा । उसने अपने उड़ते काषायको हाथसे थाम लिया । अन्धे भिन्नु कौत्सुभकी पुकार गूँजउठी—‘अनुवर्त्तिनी !’

‘आयी बाबा ’—कहतेहुए नन्दिनीने पास जाकर उसकी लाठीको थामलिया ।

भिन्नुने कहा—‘अनुवर्त्तिनी, संघका वातावरण तुम्हे कैसा लगता है बेटी ?’

अनुवर्त्तिनीने कहा—‘देव, मेरा हृदय शान्त है, मेरी भावनाएँ स्थिर हैं और मेरा चित्त अकलुष है ।’

बुद्धने प्रसन्न होकर कहा—‘भगवान् बुद्ध तेरी रक्षा करें !’

अनुवर्त्तिनी उसके पाससे चलपड़ी । स्तूपके पाँछे भूमिपर कुछ लकीरें खींचकर आनन्द भिन्नु गणना कर रहा था । उसके विशाल मस्तकपर चिन्ता

## अनुवर्त्तिनी

की हल्की लहर सिकतापर मानों अपनी पदरेख छोड़गयी थी। अनुवर्त्तिनी उसे देखकर रुकगयी। आनन्द अपने आप कह उठा—‘यदि गणना सत्य है तो संघका ध्वंस अब दूर नहीं है। नालन्दका जोभी ज्ञान अबतक सुरक्षित रहसका है उसका अन्त होनेमें विलम्ब नहीं रहा।’

अनुवर्त्तिनीने आगे बढ़कर कहा—‘आर्य्य, संघका ध्वंस ! क्या कह रहे हैं आप ?’

‘मैं भूठ नहीं कहता अनुवर्त्तिनी’—भिन्नु आनन्दने अपने दीप्त मुख को उसकी ओर मोड़कर कहा, ‘गणना, नागार्जुनकी विद्या कभी मिथ्या नहीं होमकती।’

‘गणना ?’—अनुवर्त्तिनीने शङ्कित स्वरमें पूछा, ‘आप मेरा भविष्य बता सकेंगे ?’

आनन्दभिन्नुने उसे बैठनेका संकेत करके कहा—‘अपना बाँया हाथ दिखाओ।’

नन्दिनी बाँया हाथ फैलाकर बैठगयी। एकाएक हाथ परसे दृष्टि उठा कर उसके मुखपर गड़ातेहुए आनन्दने कहा—‘आर्य्य, तुम तो विधवा नहीं हो। फिर यह कैसा छल ?’

नन्दिनी काँप उठी। उसने करुण स्वरमें कहा—‘आर्य्य, उपहास भी तो इतना निर्दय !’

आनन्दभिन्नुने गम्भीर स्वरमें कहा—‘आर्य्ये भिन्नु आनन्द स्त्री तो क्या पुरुषसे भी उपहास नहीं करता। वह अनेक मेधावियोंको दिनमें दीपक जलाकर परास्त करचुका है। किन्तु तुम विधवा नहीं हो। मैं गौतमकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि गणना सत्य है, सामुद्रिकशास्त्र सत्य है तो तुम विधवा नहीं हो।’

नन्दिनी कुछभी नहीं सोचसकी। वह उठकर खड़ी होगयी। एक

## अनुवर्तिनी

बार उसने आकाशकी ओर शून्य दृष्टिसे देखा। आनन्दभिन्नुने देखा जैसे नीले आकाशमें नवीन शतदलोंकी स्थिर निर्वात सृष्टि-सी होगयी। नन्दिनी चिन्तामग्न चलपड़ी।

संघस्थविर ध्यानमें मग्न बैठे थे। उनका पकाहुआ शरीर ताम्रवर्ण का होगया था। नन्दिनी सामने जाकर श्रद्धासे शीश नतकर बैठगयी। जब संघस्थविर बुद्धभिन्नुके नयन खुले उन्होंने देखा नन्दिनी सम्मुखही प्रणाम करगयी थी। संघस्थविर देरतक देखते रहे। आज उनके हृदयमें कामनाओं के वृत्तके न-जाने कहाँसे पत्ते निकलकर खड़खड़ा उठे। उन्होंने मन-ही-मन त्रिपिटकका स्मरण किया। नन्दिनीने कहा—‘आर्य्य, चित्तका विकार दूर करनेका संयम इतना दुख क्यों देता है जब उसका परिणाम केवल पवित्र शान्ति और सुख है?’

संघस्थविरने कहा—‘वत्से, संघर्षसे जन्म होता है। मनुष्य जैसे करवट बदलकर ही नींदमें पूरा विश्राम पाता है और वह करवट उसे एक श्रम-सी प्रतीत होती है इसी प्रकार दुख हमें केवल दिखायी देता है। इस दुखकी निवृत्ति ही मनकी वास्तविक शान्ति है।’

नन्दिनीने फिर कहा—‘देव, मनुष्यके जीवनकी चरम सात्विक वृत्ति क्या है?’

संघस्थविरने विचलित स्वर को दबानेहुए कहा—‘सम्यक् ज्ञानका सम्यक् क्रियासे सम्यक् मिलन कराना ही जीवनको सुचारु पथपर अग्रसर करना है।’

नन्दिनी उठगयी। संघस्थविरने फिर ध्यान लगानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे। उन्होंने एकबार चारोंओर देखा और फिर काँप उठे। दूर नन्दिनी सिर झुकाये चली जा रही थी।

## अनुवर्तिनी

[ ४ ]

सन्ध्याके धूमिल अन्धकारमें चैत्योंपर दीपक जलनेलगे । तथागत की विराट् सौम्य मूर्तिके सम्मुख अनेक दीपाधारोंमें आलोक पुं जीभूत होकर जगमगाउठा । अग्रधूमकी काँपती लहरें स्नायवित कम्पनमें भूमनेलगीं, घण्टे और शङ्ख बजनेलगे ।

संग्रामके एक प्रकोष्ठमें संघस्थविर बुद्धभिक्षु बैठे कुछ ध्यान कर रहे थे । धुँधला दीपक जैसे सिर उठाकर अन्धकारको देख-देखकर सिहर उठता था । एक ओर तालपत्रपर लिखी पुस्तकें रखी थीं । बुद्धभिक्षुका हृदय आज कुछ अस्थिर था । कई बार प्रयत्न करनेपर भी वह ध्यान नहीं लगा सके । उन्होंने देखा, दूर उपासिकाएँ चली जा रही थीं । वे शौरसे देखनेलगे । अन्तमें उन्होंने देखा, प्रशान्त गम्भीर नन्दिनी धीरे-धीरे चल रही थी । भिक्षुणी होकर भी उसकी चालकी मादकता कम नहीं हुई थी, क्योंकि यौवनके दो दुर्ग अपने वैभवके उफानमें मंथर आवाहनमें भूमउठते थे । उसके मांसल शरीरसे प्रभा फूट रही थी । एक क्षणकेलिए संघस्थविरके हृदयमें एक चौंधि-याती ज्वाला सुलग उठी ।

उन्होंने उठकर बाहर बैठे भिक्षुको बुलाकर कहा—‘जाओ, भिक्षु आनन्दको बुलालाओ ।’

भिक्षु चला गया । संघस्थविर व्याकुल से घूमनेलगे । उनकी छाया दीवारोंपर काँपनेलगी । थोड़ी देर बाद भिक्षु आनन्दने आकर प्रणाम किया ।

संघस्थविरने बिना उत्तर दिये पुकारा—‘आनन्द !’

‘देव !’—आनन्दने नम्र स्वरमें कहा ।

संघस्थविर शान्त होगये; उन्होंने कहा—‘वत्स, आर्यसंघको नित्य चुनौतियाँ दी जा रही हैं । तक्षशिलासे खबर आयी है कि अनेक भिक्षुओं ने चीवर त्याग दिया । वे लोग अपनी प्रसन्नतासे स्मार्त शैव होगये हैं । ऐसे समयमें हमें क्या करना चाहिए ? संघको किसी प्रकार बचाना होगा ।

## अनुवर्त्तिनी

भगवान् गौतमके अनुयायी आज अपने अन्तःकरणके सम्मुख भयानक-से-भयानक पाप करते नहीं हिचकते ।’

भिन्नु आनन्दने देग्वा संघस्थविर व्याकुल होउठे थे । उसने कहा— ‘आर्य्य, मैं दस वर्षकी आयुसे ही माता - पितासे छीनलिया गया था । मुझे नहीं मालूम मेरे माता - पिता हैं या नहीं । श्रेष्ठि धनदत्तने मुझे गोद लिया था । तबसे मैं संघकेलिए दान करदिया गया हूँ । आज मुझे संघ में रहतेहुए चौदह वर्ष बीतगये हैं । मैंने विद्याओंका मन्थन किया है । आपने अपने हाथसे मुझे ज्ञानका नवनीत खिलाया है । आजतक आपने बड़े बड़े वैष्णव, शैव अथवा विभिन्नधर्मासे हँमतेहुए मुझे शास्त्रार्थ करने भेजा था । आपके विश्वासका प्रबल श्वास ही मेरे प्रतिद्वन्द्वीकी टिमटिमाती दीपशिखाको बुझादेता था और दीपककी निर्जीव धूमराशिको उठते देख कर सब हँमदेते थे । आर्य्यसंघके प्रबल चालक यदि शत्रुको देख भयसे काँपउठेंगे तो आर्य्यावर्तमें वह आग लगेगी कि गौतमका प्रत्येक अनुयायी प्रत्येक मठ भस्ममें मिल जायगा । क्षमा करें देव, मैंने विजयतीरा के प्रबुद्ध संघागमके महायशस्वी, आयुसे अधिक ज्ञानी, प्रकाण्ड मेधावी मौम्य, सत्यवादी, संयमी संघस्थविर बुद्धभिन्नुको कभीभी चलती हवामें काँपते पत्तेकी तरह नहीं देखा था ।’

‘भिन्नु .....!’ संघस्थविर चोखउठे । किन्तु आनन्द कहतागया, ‘भिन्नुके तनका ध्वंस एक प्राकृतिक नियम है, किन्तु मनका ध्वंस एक अनाचार है, मारके अन्धकारकी विजय है ।’

संघस्थविरने कुछ नहीं कहा । वह बाहर देखनेलगे । उपासिकाएँ लौटरही थीं । संघस्थविरकी दृष्टि कहीं अटकगयी । आनन्दने देखा—वह अनुवर्त्तिनी थी । नन्दिनीने एक बार भगवान् बुद्धकी महान् मूर्त्तिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर उपासिकाओंमें मिलगयी जैसे अग्ररुधूम की लहरें आपसमें जुलमिल जाती हैं ।

## अनुवर्तिनी

आनन्द मन-ही-मन उन्मत्त-सा हिल उठा । आज उसके मस्तिष्क में एक नया प्रहार हो रहा था । नन्दिनी ! भिक्षु के संयमका सारा ममत्व क्षण-भर उपेक्षा की ठोकर से निर्जीव-सा पीछे हट गया । चौबीस बरसका वह रुकाहुआ यौवन थपेड़े मारकर अन्तस्तल के किसी कोने में पुकार उठा । संघस्थविर की व्याकुल दृष्टि में वह तृष्णा देखकर आनन्द का मन विक्षुब्ध हो उठा ।

उसने कहा—‘आर्य !’

संघस्थविर ने धीरे से कहा—‘वत्स !’

आनन्द ने धीरे से कहा—‘भगवन ! आपका हृदय...’

संघस्थविर एकाएक मुड़कर खड़े होगये । उन्होंने आनन्द को कठोरता से देखा । किन्तु आनन्द ने बिना हिचकिचाये कहा—‘देव, प्रलोभन ही प्रकाशका क्षय है ।’

‘तुम मुझे शिक्षा दे रहे हो बालक ?’ संघस्थविर ने चौंकर कहा ।

‘प्रभु मैं बालक हूँ ।’ आनन्द ने झुककर कहा ।

संघस्थविर क्षण भर मौन रहे । फिर उन्होंने ही कहा—‘आनन्द, तुम जाओ । मुझे सोचने दो । संघ की रक्षा कर्नी होगी । शत्रु बढ़ते जा रहे हैं ।’

आनन्द ने कहा—‘आर्य, मनुष्य अपने भीतर के शत्रु से सबसे अधिक भय खाता है, क्योंकि पतवार टूट जाने पर कोई नाव जल को नहीं काट सकती वह केवल लहरों की दया पर भटकने खाती है ।’

और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही तेज़ी से बाहर चला गया । संघस्थविर उद्भ्रान्त-से, मोहाकुल-से जड़ीभूत बैठे शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखते रहे । द्वार में से नीला अन्धकार, उसपर तारे ..... सब काँप रहे थे । संघस्थविर ने विचलित होकर आँखों को बन्द कर लिया ।

## अनुवर्तिनी

[ ५ ]

मेघोंका गम्भीर गर्जन रात्रिकी मनमनाती निस्तब्धतामें व्याप गया और देरतक संधाराम गूँजता रहा । संघस्थविर व्याकुल-से प्रकोष्ठमें टहलने लगे । दीपक हवासे बुझ गया । उन्हें कुछभी ज्ञात न हुआ ।

मनने कहा—बुद्धभिक्षु तुमको क्या हुआ ? तुम जीवनके आदर्श को इतना नीचे गिरागये ? मैं समझता था अनुवर्तिनीके मोह-जालमें साधारण भिक्षु कुरंगकी तरह हतचेत होकर फँस जायगा किन्तु भदन्त बुद्धभिक्षु ?

किन्तु तभी कोई कह उठा—कमलकों पानेकेलिए कीचड़में पाँव देना क्या कोई पाप है ?

संघस्थविर बैठ गये । लोभ गम्भीर भावसे हँसने लगा ।

संघस्थविर फिसला है किन्तु वह सँभलेगा भी, क्योंकि गौतमका आशीर्वाद यही पुकार रहा है । किन्तु रोग तो साधारण नहीं है । मृत्यु ही एकमात्र उपाय है ।

संघस्थविर मुस्करा उठे ।

और जो यह समझते हैं कि आकर्षण पाप है वह अपने आपको धोखा देते हैं । लेकिन मैं नन्दिनीसे प्रेम करसकता हूँ ? संघस्थविर ज़ोर से कह उठे । स्वर वर्षाकी ध्वनिमें गिड़गिड़ाने लगा । वह और उत्तेजित होकर कह उठे—मनुष्य करनेको क्या नहीं करसकता ? क्या नन्दिनी मेरी नहीं होसकती ? होसकती है, होसकती है !

पापकी विकराल छाया समस्त नदीपर छाकर बाढ़ लेआयी । और संघस्थविर उन्मादमें भरकर प्रकृतिकी अभिसार-लीलामें अट्टहास कर उठे । प्रकोष्ठका अङ्ग-प्रत्यङ्ग गूँज उठा और प्रतिध्वनि करता अन्धकार भी हँसने

## अनुवर्त्तिनी

लगा, अट्टहास करनेलगा । कुछ देरको वह सबकुछ भूलगये । उन्होंने मौन होकर सुना, स्वर अबभी गूँजरहा था । उनकी आँखोंके सामनेसे नन्दिनीका रूप चलउठा । वे विशाल नयन जिनके कानोंमें लाज-भरी अँगड़ाई लेती ललाई मांसल कमलों-सी पँखुड़ी खोलकर आलोक फैला देती थीं उन्हें अन्धकारमें माना देखनेलगे । वह मादक विह्वल अङ्गस्पर्श का सुख उन्हें विषसे भरगया । बिजली कौंधउठी ।

किन्तु, संघस्थविरने कहा—बुद्धभिक्षुने भी कभी प्रेम किया था ? काषायमें वैराग्य है प्रेम नहीं । प्रेम है किन्तु सूर्यके प्रकाश-सा । ऐसी अनुवर्त्तिनीके स्थान करोड़ों अनुवर्त्तियोंको अपनानेका, पथ-प्रदर्शित करनेका भार उनपर आर्य्यसंघने डाला है ।

संघस्थविर फिर हँसपड़े ।

मैं अपनेको धोखा देरहा हूँ । चाहे मोह, चाहे वासना, चाहे पाप, अथवा कुछभी हो बुद्धभिक्षु एक नारीके मांसल पयोधरोंको देखकर व्याकुल होउठा है । इस नश्वर अणुभाण्डकी एक मनोहर स्वर्गिक कल्पना !

संघस्थविर फिर उद्भ्रान्त-से घूमनेलगे । उन्होंने कहा—कबतक अपनेको बहलाओगे भिक्षु ? तुम नन्दिनीके मांहमें फँसगये हो, किन्तु तुम्हारा दम्भ तुम्हें भीतर-ही-भीतर खारहा है । सत्य सत्य ही है, और यदि सत्य को झुँटाया जासकता है तबभी सत्यका एक रूप दूसरे रूपसे ढँका नहीं जासकता । संघस्थविर चुप होगये । उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा । अन्धकार ठण्डसे सिसकरहा था । बिना साँस लिये नभसे जलधर अवि-राम मूसलाधार वर्षा कर रहे थे । पृथ्वीपरसे छींटें उछलरही थीं । कभी कभी बिजली चमकजाती थी । प्रकोष्ठमें भी सीलन थी । ठण्डी हवाके झोंके भीतर धुस-धुस आते थे । उनमें एक चिपकनापन था ।

एकाएक वासनाने अवगुण्ठन खींचकर कहा—नन्दिनीका सौन्दर्य

बुद्धभिक्षुको प्रिय नहीं, उसका वह मादक यौवन प्रिय नहीं। उसे चाहिए केवल नन्दिनी।

पुराने संघमने मुँह फेरकर पूछा—तब किसलिए भिक्षु ?

क्योंकि मन उसे चाहता है।

और किसी उपासिकाको नहीं चाहता ? नारीके प्रति लोभ ? आलिङ्गनकी मादक तृष्णा, पल - भर शरीरसे शरीर सटाकर ऊष्मामें भूम जाना, त्यागके शवपर चुम्बन करना, यही सब तुम्हारा प्यास है भदन्त बुद्धभिक्षु ? माताके गर्भसे जन्म लिया था अनजाने। विद्या पढ़ी, विवाह किया। अनिष्ट सुन्दरी पत्नीके स्वर्गवास होनेपर शारीरिक विश्वकी मोह-जड़ित नश्वरता देखकर तुम यौवनमें अपने आप भिक्षु बने थे। उसके बाद आज तक तुम स्त्रीको भूले रहे। फिर आज इतने वर्ष बाद यह आग क्यों धधक उठी जिसके कसेले धूससे संघ घुटकर मरजायगा ? आज तुम में यह प्यास क्यों जाग उठी ?

संघस्थविरने देखा। सामने मार खड़ा था। पीछे गौतमका हाथ अभय दे रहा था।

विजली कड़कने लगी। विष अमृत बनकर कण्ठमें उतर गया। प्रकाश सो रहा था, हलचल सो गयी थी। संघस्थविर पुकार उठे— बुद्ध शरणं, धम्म शरणं, संघ शरणं गच्छामि।

अन्धकार निर्मल होगया। पापकी भीषण प्राचीर ढह गयी। संघ-स्थविर चौंक उठे। यह वह क्या सोच रहे थे ? क्या कहते समस्त आर्य-संघके भिक्षु कि बुद्धभिक्षु एक नारीके अङ्कमें धँस जानेके लिए सबकुछ भूल गया जैसे कीड़ा अन्धकारमें घुस जाता है। यह वह क्या कर रहे थे ? इस वृद्धावस्थामें यह किस जन्मका पाप अचेतन बनकर उन्हें पतनके महा-खड्गमें लिये जा रहा था ?

## अनुवर्तिनी

वे उठे और बुद्धके मन्दिरकी ओर चले। पानीमें उनका शरीर बिल्कुल भीगगया। उन्होंने प्रतिमाके चरणोंपर सिर टेकदिया और कहने लगे : भगवान्, मेरे पापके कारण संघपर कोई दोष नहीं आये। मैंने अनजाने ही यह पाप किया है। आपके आशीर्वादसे मैंने वृद्धावस्थाको महाकलङ्क से बचालिया है भगवान् ! एक दिन आपने यौवनमें मारको पराजित किया था आज उसी शक्ति, उसी सत्यका वरदान मुझे भी दो निर्विकार !

संघस्थविर रोउठे जैसे आज उनका हृदय पापियोंको भेदकर बाहर आजानेकेलिए घोर सघर्ष कर रहा था।

आकाशमें बादल गरजते रहे। संघागम निस्तब्ध-सा सो रहा था। हवाके तेज झोंकोंमें पानी छहरजाता था और अन्धकारमें तड़पने लगता था।

[ ६ ]

प्रभातकी शीतल बेलामें बादल फटनेलगे और नीला आकाश बीचमेंसे भाँकनेलगा जैसे आज प्रकृतिकी उदासीनताको बढ़ानेकेलिए ही भोरने वस्त्र धारण किये थे। शीतल वायु बलहीन-सी चल रही थी। दूर क्षितिजपर प्रकाश फूट रहा था।

अन्धा भिक्षु कौत्सुभ चैत्यमेंसे निकलकर पुकार उठा—‘नन्दिनी !’

नित्यकी भाँति उसे आज दूरहीसे उत्तर नहीं मिला। नन्दिनीने धीरेसे पास आकर कहा—‘बाबा !’

‘हाँ वत्से !’ स्नेहसे अन्धा वृद्ध उसके सिरको छूनेकेलिए टटोलने लगा। अनुवर्तिनी मुकगयी। कोई कुछ न बोला। वृद्धने ही कहा—‘अनुवर्तिनी, मुझे तड़ाग तक ले चलोगी ?’

‘क्यों नहीं ले चलूँगी ?’ खिन्नतासे नन्दिनीने उत्तर दिया।

## अनुवर्त्तिनी

अनुवर्त्तिनी आज कुछ अपनेको भूली-सी थी। आज उसके हृदय में अज्ञात आशङ्का होरही थी। हांठ जुड़े थे, आँखोंमें उदासी साँकरही थी।

वृद्ध बोला—‘अनुवर्त्तिनी ?’

‘भिन्न ?’ अनुवर्त्तिनीने कहा ।

‘तू आज उदाम - सी लगती है मुझे । क्या आज सूर्य नित्यकी भाँति पूर्वसे नहीं उगरहा ? नित्य तो इतनी बातें करती थी कि मैं सुनते सुनते थककर तुझे चुप करनेका पथ खोजता था और आज तू बिल्कुल मौन है । इसका कारण क्या है ?’

‘कुछ तो नहीं । क्या प्रत्येक वस्तुका कारण होना आवश्यक है ?’ अनुवर्त्तिनीने कहा ।

‘प्रत्येक क्रियाके परिणामका मूल हेतु कारण ही है नन्दिनी । अनेक कारणोंसे अनेक कार्य होना अथवा इसके विपरीत भी सापेक्ष संसर्गका ही आवश्यकीय रूप है ।’

‘क्या होगा कहकर भी ?’ अनुवर्त्तिनी दबीहुई-सी कहउठी ।

‘कहां न ?’ वृद्ध ने आग्रह किया ।

‘बाबा ! आनन्द भिन्न ने कहा था कि संघके ध्वंसके दिन निकट आरहे हैं ।’

‘यदि आ ही रहे हैं तो कौन रोकसकता है पगली ? भविष्य तो अपने हाथोंमें नहीं है ।’

‘और मुझे ज्योतिषीके मुखपर एक भयकी रेखा दिखायी दी थी ।’

‘किसके ? भय ? क्यों ?’ वृद्ध चौँककर कई प्रश्न एकसाथ पूछबैठा ।

शान्तिसे नन्दिनीने कहा—‘आनन्द भिन्न ने मुझे बताया था और कहा था अदृष्ट यही कहता है ।’

## अनुवर्त्तिनी

‘किससे ?’ वृद्धने फिर पूछा ।

‘यह तो उन्होंने नहीं बताया,’ अनभिज्ञ नन्दिनीने उत्तर दिया । वृद्ध चुप होगया मानों किसी गहरी चिन्तामें था । उसका ऐसा भाव देख कर अनुवर्त्तिनी बोलउठी—‘तुम ऐसे चुप क्यों होगये ?’

‘मेरा हृदय किसी अज्ञात प्रेरणासे दहलरहा है ।’ वृद्धने अपनी सफ़ेद पुतली घुमातेहुए कहा । अनुवर्त्तिनी उस स्थानकी निर्जनता तथा वीभत्सता देखकर भयभीत होगयी । उसने वृद्धका हाथ पकड़कर कहा—‘चलो यहाँसे, मुझे डर लगता है ।’

‘डरकी क्या बात है ? सत्य और शान्ति हमारे साथ हैं । गौतमका वरदहस्त हमारे शीशपर है । मार अपना कुछ नहीं करसकता । तुम्हारे हृदयमें कोई मोह तो नहीं है ?’ वृद्ध बात करते-करते सहसा पूछबैठा ।

‘हाँ है,’ अनुवर्त्तिनी झेंपतीहुई बोली ।

‘क्या है ?’ वृद्धने अविचल भावसे पूछा ।

‘भिन्नु आनन्दने कहा था कि मैं विधवा नहीं हूँ । तभीसे मेरे हृदय में एक तृष्णा एक स्वप्नकी मादक छलना-सी जागउठी है ।’

‘अनुवर्त्तिनी !’ वृद्धने गम्भीर होकर कहा—‘तुमने मेरा उपदेश नहीं माना । तुम निर्मम नहीं हुई ।’

अनुवर्त्तिनी चौकपड़ी । यह वह क्या प्रगट करगयी ! उससे कुछ भी नहीं बोलागया । वृद्धने फिर कहा—‘अनुवर्त्तिनी, गौतमको साक्षी करके कहो कि तुम उस कल्पित मनुष्यकी मृगमरीचिकामें नहीं भटकोगी । आनन्द भिन्नुकी गणना मिथ्या नहीं होसकती, किन्तु क्या तुम वैधव्यके बलपर भिन्नुणी हो ? क्या पति प्राप्त होनेपर तुम लौटजाओगी ? गौतमको समर्पित होकर तुम एक साधारण मनुष्यके पीछे भागोगी ? कहो अनुवर्त्तिनी तुम इस चाञ्चल्यका प्रायश्चित्त करोगी ?’

## अनुवर्त्तिनी

‘करूँगी भिक्षु !’ मन्त्रमुग्ध अनुवर्त्तिनीने उत्तर दिया । वह लाज से गड़ी जारही थी ।

‘अनुवर्त्तिनी, आज मैं तुम्हें एक बात बताऊँ, सुनोगी?’ वृद्धने पूछा ।

‘कहो न ?’ नन्दिनी नम्र होकर बोली ।

‘अनुवर्त्तिनी,’ वृद्ध बोलनेलगा, ‘तुमने संघमें एक हलचल मचादी है । संघका प्राण मानों मायामें लिप्त होचुका है । तथापि तुमभी फिसली हो ? फिर आर्य्यसंघके मानकी रक्षा क्या यह अन्धा करेगा ?’

वृद्ध अधिकाधिक चिन्तामग्न और गम्भीर होता जारहा था । वह कहतागया— ‘मानवकेलिए राष्ट्र बदलेगा । अनुवर्त्तिनी, यह मेरी भविष्य-वाणी है । तुमको अपना स्वार्थ त्यागना पड़ेगा । तुम्हारा सुहाग कुछ नहीं । तुम्हारेलिए पुरुष कुछ क्षणकेलिए एक धिनौना भेड़िया है । तुम उसपरसे अपनी आसक्ति हटाओ । तुम महोल्लासके नीचे काषाय ग्रहण करचुकी हो । फिर तुममें यह अहंकार क्यों ? तुममें यह मादकता कैसे बची रहगयी ? तुम गौतमकी पवित्र अनुवर्त्तिनी आज एक साधारण पुरुषकी अनुवर्त्तिनी होने जारही हो ? क्या यह संघकेलिए लज्जाजनक बात नहीं ? क्या तुम अपनेको सत् चिन्तन, सत् कर्म करनेवाला समझती हो ? अनुवर्त्तिनी, फिर कहो कि तुम चञ्चल नहीं हुई हो । तुम भिक्षुणी हो । तुम्हें गौतमके आठों उप-देश जीवनमें पालन करनेकेलिए याद हैं । तुम गिरतोंको उबारोगी । तुम गौतमपर पूरा-पूरा विश्वास रखोगी और तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पूरा-पूरा ध्यान रहेगा ।’

वृद्ध चुप होगया । हवामें वृक्षोंके पत्ते खड़खड़ा उठे । अनुवर्त्तिनी अपराधिनीकी भाँति देखतीरही । वह कुछभी बोलनेका साहस न करसकी । वृद्धने फिर कहा—‘अनुवर्त्तिनी एकवार गौतमकी शरणमें आओ ।’

अनुवर्त्तिनी काँपते स्वरसे साहस करके बोली—‘बुद्ध शरणं, धम्मं

## अनुवर्त्तिनी

शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।’

बुद्ध हँसपड़ा । बोला —‘आया न साहम ? अच्छा जो मैंने कहा उसे भी स्वीकार करो । तब संघपर यह भयानक आघात न होगा ।’

अनुवर्त्तिनीने माहस बटोरा । नीचे देखतीहुई स्थिर स्वरसे जो बूढ़ने कहलाया धीरे धीरे दोहरागयी ।

बूढ़ने कहा—‘बस इतना ही काफी है ।’ और वह चिल्लापड़ा—‘तथागत ! तुम्हारे अनुवर्त्ती और अनुयायी तुम्हें भूलते जा रहे हैं, उन्हें जगाओ भगवान् !’

और बूढ़ बड़ी भयङ्करतासे चीख उठा—‘बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि !’ मानो आज वह अकेलाही आर्यसंघका प्रतिनिधि बनकर बुद्धधर्म और संघकी शरणमें जा रहा था । अनुवर्त्तिनी मुँह - फाड़े अवाक् और भयभीत-मी उसे देखरही थी । शब्द अभीभी गूँजरहे थे ।

बूढ़ने पहले-जैसे स्वरसे कहा—‘चलो ।’ अनुवर्त्तिनीने उसका हाथ पकड़ लिया । प्रकृतिमें फिरभी नित्यका-सा जीवन नहीं था । आज मानां अदृष्टकी ऊष्मा चारों ओर तीव्र वेगसे फैलरही थी । एकाएक अनुवर्त्तिनी बड़बड़ा उठी—‘बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।’ बूढ़ हँस पड़ा । अनुवर्त्तिनीका हृदय मँजगया, उत्फुल्ल होगया, पवित्र होगया । उमने देखा—बूढ़ गम्भीर था ।

उस समय भिन्नु जल्दी-जल्दी अपना काम समाप्त करके महा-विहारकी ओर जा रहे थे । अनुवर्त्तिनी और बूढ़ भी उधर ही चलदिये ।

[ ७ ]

संघस्थविरने सिर उठाकर पूछा—‘आनन्द भिन्नु, कहो क्या कहते हो ?’

## अनुवर्तिनी

आनन्दने निष्प्रभ मुखसे कहा—‘आर्य्य, मैं संघका त्याग करने आया हूँ ?’

‘त्याग !’ संघस्थविर चौंककर उठखड़े होगये—‘तुम भिक्षु आनन्द संघका त्याग करने आये हो ? तुम चीवर उतारकर फेंकदोगे । चौदह वर्षसे जिसे मैंने भिक्षु होकर भी पिताकी ममतासे पाला है वही तुम आज मुझसे कहनेकी धृष्टता कर रहे हो कि तुम वामनाओंसे पराजित होकर यह चीवर फाड़कर फेंकदोगे । जिमकी शान्तिसे आज आर्य्यावर्त, दाक्षिणात्य, चीन, यवद्वीप, सारा संसार एक सूत्रमें बंधगये हैं; सहस्रों जीवन जिसकी पवित्रता की छायामें सार्थक होगये हैं, उसीकी गरिमाको टुकराकर तुम मारके सामने हतभाग से रोरहे हो ?’

‘संघस्थविर !’ आनन्दका मुख सुन्दर होउठा—‘मैं गृहस्थका जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ । मैं कोई पाप तो नहीं कर रहा । भिक्षु गृहस्थ हो सकता है, गृहस्थसे फिर भिक्षु होसकता है ।’

‘नहीं आनन्द’, संघस्थविरने फिर कहा —‘आज आर्य्यावर्तके प्रकाण्ड मेधावी विजनतीराके संचारामको सिर झुकाते हैं । आनन्दभिक्षु एक साधारण व्यक्ति नहीं । वह बुद्धभिक्षुका शिष्य, अनेक विद्वानोंको परास्त कर चुका है । उसके कठोर विवाद धर्मकीर्तिके-से उज्ज्वल और अकाट्य प्रमाण हैं । आर्य्यसंघके चारोंओर विपत्तिके बादल घिर रहे हैं । राजा अपना नहीं है । ब्राह्मणोंका प्रहार दिन-पर-दिन प्रबल होता जा रहा है । सिद्धोंका प्रजापर प्रभाव बढ़ता जा रहा है । चारोंओर भयानक बातें सुनायी देती हैं । बर्बर यवनोंका आक्रमण प्रायः होतारहता है । ब्राह्मणोंने जो विष फैलाया है वह धीरे-धीरे हमारी भक्त प्रजामें व्याप्त होता जा रहा है । बर्बर यवनोंने पुरुषपुर, तक्षशिला, और अनेक बौद्धविहारोंको भस्मीभूत कर दिया है । आनन्दभिक्षु, तुम चले जाओगे तो आर्य्यसंघकी रक्षा क्या मैं अकेला करूँगा ? मैं जानना चाहता हूँ कि तुम स्त्रीपर इतने आसक्त क्यों होगये ?’

## अनुवर्तिनी

आनन्द निर्विकार-सा खड़ा रहा। वह बोला—‘भदन्त, मैं जीवनमें आज रूप और मोहसे पराजित होगया हूँ। मैंने कभीभी जो नहीं देखा उसे आज देखना चाहता हूँ प्रभो ! यदि आर्य्यसंघ एक व्यक्तिपर निर्भर है तो वह अधिक जीवित नहीं रहसकता।’

‘भिन्नु !’ संघस्थविर चीख उठे—‘तुम संघका अपमान कर रहे हो।’

‘नहीं भिन्नु !’

‘तुमने मुझे भिन्नु कहा है ?’

आनन्द हँसपड़ा—‘अभिमानको ठेस पहुँची है आर्य्य ! आज आप साधारण भिन्नु नहीं रहे न ? किन्तु मनुष्य सबसे ऊपर है। उसका सुख हम मठों और विहारोंमें बन्दी नहीं करसकते।’

संघस्थविरने आगे बढ़कर कहा—‘आनन्द, तुम स्त्रीके आलिङ्गन को सुख कहते हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ?’

‘लज्जा ?’ आनन्दने निर्भीक स्वरसे कहा—‘आर्य्य, क्या यशोधरा पाप है ? क्या राहुलका जन्महेतु पाप है ? मैं पूछता हूँ आज क्या मातृगौरव पाप है ? नहीं, संघस्थविर ! यौवन भिन्नु होकर रहनेकी आयु नहीं है।’

‘पापात्मा,’ संघस्थविरने कहा—‘तुम्हें नारीके स्तनोंमें आज जीवन का स्वर्ग दिख रहा है ? तुम्हें उन बड़ी-बड़ी आँखोंमें जो अमृत दिख रहा है वह वास्तवमें विष है। यौवन समाप्त होजायगा, बल क्षीण होजायगा किन्तु आत्माका ध्वंस होनेपर तू कुत्तांकी तरह तड़प तड़पकर मरजायगा।’

‘संघस्थविर,’ आनन्दने गम्भीर होकर कहा—‘यदि यौवन पाप है तो प्रकृतिने उसे बनाया ही क्यों ? व्यवहार और प्रकृतिका सम्बन्ध अटूट है। यह एकक्षण अपना इतना कठोर सत्य लिये है कि कोईभी उसे झुठा नहीं सकता। मैं जाना चाहता हूँ।’

## अनुवर्तिनी

संघस्थविर क्रुद्ध होउठे । उन्होंने फूत्कार किया, 'तुम नहीं जासकते ।'

'क्यों ?' आनन्दका स्वर खिंचगया ।

'श्रेष्ठि धनदत्तने तुम्हें पालितपुत्रके रूपमें सङ्घको अपने समस्त धन के साथ दान किया है । यदि तुम्हें मैं भी छोड़ूँ तोभी श्रेष्ठि धनदत्त नहीं छोड़ेगा ।' और वह कठोरतासे हँसउठे ।

आनन्दने विलुब्ध होकर कहा—'तब मैं एक असहाय दस वर्षका बालक था । कुछभी नहीं जानता था । श्रेष्ठि धनदत्तने जिस हाथसे मेरे मुखमें अन्न डाला था, उसी हाथसे मेरे जीवनका सारा सुख-हर्ष छीनलिया था । मेरी बलिपर निर्वाणकी चाह करके क्या वह अपनी तृष्णासे मुक्त होसकेगा ? संघस्थविर मैं मनुष्य हूँ बलिका बकरा नहीं जो किसीके दानको स्वीकार करके धनकी तरह निर्जीव-सा अपना सिर मुकादूँ । मैं अस्वीकार करता हूँ । मैं किसीका पशु नहीं हूँ ।'

'नराधम,' संघस्थविर चिल्लाउठे—'आर्य्यसङ्घ तुम्हे कभीभी क्षमा नहीं करेगा । राजाको विवश होकर न्यायकी ओर झुकना पड़ेगा । तू संघ नहीं छोड़ सकता ।'

'न्याय ?' आनन्दके होठोंपर विद्रूप खेलउठा—'मनुष्यको पशु बनादेना आपका न्याय है ! यदि यही आपकी गरिमाका यश है तो आर्य्य-संघ टुकड़े टुकड़े होजायगा । गौतमके अन्तिम पग-चिन्हतक पवित्र आर्य्य-भूमिसे मिट जायेंगे ।'

'चुप रहो !' संघस्थविर हाँफउठे ।

'मैं निश्चय ही जाऊँगा बुद्धभिन्नु ! तुम मुझे कारागारमें रखवा सकते हो, तुम मुझे भागनेसे रोकसकते हो; किन्तु मुझे भिन्नुके रूपमें नहीं रख सकते ।'

क्रोधसे संघस्थविर उसकी ओर बढ़नेलगे । उनकी मुट्टियाँ बँधगयीं ।

## अनुवर्त्तिनी

आनन्दभिन्नु कहतारहा—‘मैं चला जाऊँगा, मेरे साथही नन्दिनी जायगी।’

‘नन्दिनी !’ संघस्थविरके मुँहसे अकस्मात् निकल गया । उनके हाथ खुल गये । वह व्याकुल-से पूछ उठे—‘नन्दिनी जायगी ?’

आनन्द ठठाकर हँस पड़ा । वह कहने लगा—‘क्यों, संघस्थविर ? नारी पाप है, आलिङ्गन विष है ? और नन्दिनीका नाम आतेही आप कैसे इतने व्याकुल हो उठे ! नन्दिनी जायगी । मैं जानता हूँ आप उसपर आसक्त हैं । आप अपना मारा छल लगाकर भी उसे नहीं रोक सकते ।’

संघस्थविर लौट गये । प्रकोष्ठकी दीवारकी ओर मुँह करके उन्होंने कहा—‘आनन्द, नन्दिनी एक आग है, वह संघको भस्म कर देगी । उसे जाना ही होगा ।’

आनन्द उत्फुल्ल सा पुकार उठा—‘संघस्थविरकी जय हो ! उन्होंने आज एक मृत्यु कहा है क्योंकि उनके अभिमानके पङ्ख उस प्रखर ज्वालामें झुल सगये हैं ।’

संघस्थविरने कुछ नहीं कहा । वह वैसेही उसकी ओर पीठ करके खड़े रहे । आनन्दभिन्नुने देखा वह जैसे बिल्कुल थक गये थे । संघस्थविर वहीं भूमिपर पराजित-से बैठ गये । उनके चरणोंके नीचे मेधावियोंका ज्ञान तालपत्रोंपर लिखा पड़ा था । किन्तु वे चुप थे । किसी विकराल छाया ने उनके स्वरको अवरुद्ध कर दिया । भय और क्रोधसे वह हाथोंमें मुँह छिपा कर लेट गये । आनन्द चला गया ।

[ ८ ]

अनुवर्त्तिनी विशाल स्तम्भके सहारे खड़ी होकर आरतीके बाद इधर उधर देखने लगी । भिन्नुगण अपने-अपने कार्यमें मग्न थे । अगुरुधूमकी गन्धसे वायुमण्डल महकरहा था । उसी समय आनन्दभिन्नुने उत्तेजित

## अनुवर्त्तिनी

आविशमें प्रवेश किया और नन्दिनीसे कहा—‘शुभे, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ ।’

नन्दिनीने कहा—‘मुझसे ?’

और वह विस्मित सी उसके साथ चलपड़ी । भग्नस्तूपके चारोंओर घाम उगरही थी । दोनों वहीं बैठगये । आनन्दका श्वास फूलरहा था । उसने एकबार चारोंओर देखा और कहा—‘नन्दिनी, आज जोकुछ मैं तुम से कह रहा हूँ तुम्हारा जीवन, यौवन और भविष्य सबकुछ उसीपर निर्भर है ।’

नन्दिनी चकित होगयी । उसने कहा—‘आर्य्य, ऐसी क्या बात है मैं भी तो सुनूँ ।’

आनन्दभिन्नुने निर्भीक स्वरसे कहा—‘देवी, मैं तुम्हारा पति हूँ ।’

अनुवर्त्तिनी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी बैठोरही । फिर एकाएक उसकी भुकुटि तनगयी । वह कठोर स्वरसे बोली—‘भिन्नु, तुम एक विधवाका नहीं एक उपासिकाका अपमान कर रहे हो ।’

आनन्द फिरभी नहीं चौंका । उसने कहा—‘अकाल वैधव्यकी यह छलना तुम्हारा एक घोर अज्ञान है जिसके कारण तुम पर्वतसे उतरनेका मार्ग न पाकर ऊपरसे लुढ़कनेकेलिए तैयार होगयी हो ।’

अनुवर्त्तिनी क्रोधसे चिल्लाउठी—‘तुम पागल होगये हो भिन्नु !’

आनन्दने धैर्यसे कहा—‘आर्य्यसंघकी कोई स्त्री तबतक उपासिका नहीं होसकती जबतक उसका पति उसे आज्ञा नहीं देदे ।’

‘और आप’, अनुवर्त्तिनी चिढ़कर कहउठी—‘धनदत्तके पालित पुत्र जो संघको दान करदिये गये हैं, आज्ञा देने योग्य कबसे होगये ?’

‘अनुवर्त्तिनी, मैं विद्रोही हूँ ।’ आनन्दने व्याकुल होकर कहा ।

अनुवर्त्तिनी पागलकी तरह हँसउठी । उसने कहा—‘भिन्नु, तुम

## अनुवर्त्तिनी

मुझे पागल बनारहे हो ? क्या मैं सचमुच इतनी सुन्दर हूँ कि आर्य्यसङ्घका मेधावी आनन्दभिक्षु सबकुछ त्यागकर मुझे प्राप्त करनेकेलिए इतना बड़ा असत्य गढ़ रहा है ? मेरी माताका नाम तो बताओ भिक्षु ?

आनन्दने उसे तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर कहा—‘तुम्हारी माताका नाम चन्द्रभागा था, तुम्हारे पिताका अवलोकितेश्वर; और मेरे पिताका नाम चन्द्रसेन था, मेरी माताका विजनवती । दस वर्षकी आयुपर मुझे दस्यु पकड़कर लेगये थे । उन्होंने मेरे माता-पिताकी हत्या करदी थी । श्रेष्ठि धन-दत्तने मुझे एक दिन जान्हवीके तटपर पाया था । और तुम्हारे माता-पिता का पुराना मित्र श्रेष्ठि सुदत्त मेरे पिताका भी पुराना मित्र था । और सुनना चाहती हो ?—कि तुम्हारे पिता जब उज्जयिनीसे लौटकर मणिभद्रके यहाँ गये थे तभी उन्होंने मेरा तुमसे विवाह किया था, क्योंकि अवलोकितेश्वर चन्द्रसेन के साथ-साथ बालीद्वीपसे व्यापार करना चाहते थे; तुम्हारी माता...’

‘भिक्षु’, अनुवर्त्तिनी सिर पकड़कर रोनेलगी—‘मैं नहीं जानती मैं क्या करूँ । भिक्षु, तुम, तुम मेरे.....? नहीं, नहीं।’—फिर वह चुप हो ऊपर देखकर कहउठी—‘क्या तुमने गणनासे ही तो सब नहीं जानलिया ?’

‘नहीं नन्दिनी’, स्नेहसे आनन्द कहउठा—‘गणनासे नाम नहीं निकलता । और यदि वह भी सुनना चाहती हो जो एक दस वर्ष तकका बालक याद रख सकता है तो वह भी सुनो ?’

अनुवर्त्तिनी थकित -भी बैठीरही । आनन्द कहनेलगा—‘चलो नन्दिनी, संघमें हम साथ - साथ नहीं रहसकते । संघ कहता है यौवन पाप है, प्रेम पाप है; किन्तु मैं इस सबका त्याग नहीं करसकता । मेरा जीवन एक शुष्क नीरस पेड़का ठूँठ - मात्र बनकर नहीं रहसकता । आज जो घटा छाया है वह मेरी अपनी है । वर्षोंसे तुमने मेरी प्रतीक्षा की है, दुःखोंसे पराजित होकर तुमने अपनी हारको भाग्यकी जय बनाकर सिर झुकादिया है । देखो, यह भी एक दिन है कि तुम्हारा खोयाहुआ कोष आज तुम्हारे

## अनुवर्त्तिनी

सामने आया है नन्दिनी ! हम तुम, तुम हम, और किसीसे कुछ नहीं । संसारका बड़े-से-बड़ा वैभव तुम्हारे चरणोंपर न्यौछावर है । आओ चलें । जिस पतिकेलिए रो-रोकर तुमने तुम्हारी माताने आँखें खोयी हैं आज वह अचानक ही तुम्हारे जीवनके सुखस्वर्गके द्वार खोलने तुमसे भीख माँग रहा है ।’

अनुवर्त्तिनीने देखा : आनन्दके मुखपर अद्भुत रूप आतुर हो उठा था । वह देखतीरही । उसने कहा—‘तुम ? तुम मेरे देवता हो किन्तु आर्य्य-संघके लोग क्या कहेंगे ? क्या वे इसपर विश्वास करेंगे ? नहीं भिन्नु, जब इतनी बातगयी तो अब कितना सुख है जिसकेलिए यह रूप ढँक दिया जाय ।’

‘रूप ?’ आनन्दने कहा—‘यह परवशताका रूप चाहे कुछ हो मन का सौन्दर्य नहीं है, क्योंकि इसमें सत्यकेलिए संघर्ष करनेकी शक्ति नहीं रही है । क्या तुम कहसकती हो कि तुम पुरुषसे घृणा करती हो ? क्या यह अथाह सौन्दर्य लेकर तुम केवल पथरोसे टकराकर हाहाकार-मात्र करनेकेलिए हो ?’

अनुवर्त्तिनी काँप उठी । उसने कहा—‘तथागत, मेरी रक्षा करो । मैं नारी हूँ कुछभी नहीं समझती ।’

आनन्द खिन्न-सा बोला—‘नन्दिनी, तुम पागल हो । तुम भयसे जड़ होगयी हो ।’ वह खड़ा हो गया ।

अनुवर्त्तिनीने धीरेसे कहा—‘नहीं भिन्नु, मैं गौतमकी उपासिका हूँ । तुम रूप और यौवनके मदमें जीवनके उच्च आदर्शोंको भूलकर फिरसे कीचड़ में पाँव देना चाहते हो । मैं पवित्र उपासिका तन और मनसे गौतमकी शपथ खाकर संघकेलिए अपना समर्पण कर चुकी हूँ । मैं कहीं नहीं जाऊँगी ।’

आनन्दने सुना । पाँव लड़खड़ागये । वह मूर्छित होकर गिर गया । अनुवर्त्तिनी चीख उठी । गोदमें आनन्दका सिर रखकर वह किसीभी स्त्रीकी

## अनुवर्तिनी

भाँति व्यजन करनेलगी । जब उसने सिर उठाकर देखा, सामने संवस्थविर बुद्धभिक्षु खड़े क्रोधसे काँपरहे थे । उनका मुख काला और विकृत हो रहा था ।

[ ६ ]

सन्ध्या बीतचली । बादलोंके कारण गहन अन्धकार छा गया । आज संघमें एक काटनेवाली उदासी सबके हृदयमें शङ्का उत्पन्न कर रही थी । हवा चलरही थी । संघका सिंहद्वार बन्द कर दिया गया । चर्चाकर पट मिल गये । अन्धकारकी छाया डरावनी होकर प्राङ्गणमें फैल गयी । उस उत्कट नीरवमें एक असह्यता थी जो मन मिचलारही थी ।

सब भिक्षु इकट्ठे हो रहे थे । संघस्थविरने घोषणा की थी कि आज एक प्रमुख प्रश्नपर विचार करना है । सब गम्भीर और उत्सुक थे । एक ओर उपासिकाएँ बैठी थीं । अनुवर्तिनी चुपचाप एक ओर बैठी थी । आज वह डरी हुई, धैर्यहीन, भिक्षु-तेजसे भ्रष्ट-सी दिखाई दे रही थी । आनन्द भिक्षु निष्प्रभ-सा अनुवर्तिनीको एकटक देख रहा था ।

एकाएक अन्धा बूढ़ कौत्सुभ बोला — ‘संघस्थविर, आज इस समय इस मन्त्रणाकी क्या आवश्यकता है ? क्या कारण है उदासीनताका ?’

संघस्थविर गम्भीर होकर बोल पड़े — ‘भिक्षु, इस पैशाचिक अन्धकारका कारण केवल नन्दिनी है ।’

नन्दिनी चौकपड़ी । वह उठ खड़ी हुई और संघस्थविरकी ओर उठ आयी । कौत्सुभ चुप हो गया । संघस्थविरने देखा वह क्रोधसे काँपरही थी । वे कहने लगे — ‘आर्य्य भिक्षु-समुदाय सुने ! गौतमके सिद्धान्तोंको मानकर चलनेवाले इन भिक्षुओंका जीवन सदा आदर्श रहा है । उसमें कोई कलुषकी छाया भी नहीं । फिर क्या कारण है कि संघके भिक्षुओंके हृदय से वैराग्य हटता जा रहा है ? क्या कारण है कि मंघावी आज बुद्धिहीन, वीर्यहीन, तेजहीन, नरककालोंका भार उठाये मानव जीवनके अभिशाप

## अनुवर्त्तिनी

बनकर महापापके विषको फैलारहे हैं ? इस सबका कारण एक है । वह है केवल नन्दिनीका आगमन । क्या आजसे पहले भी कभी संघमें यह तामसी निर्जनता फैली थी ?

एकत्रित भिन्नु समुदाय चुपचाप बैठारहा । वे लोग नन्दिनीकी ओर देखरहे थे । संघस्थविर गम्भीर थे । कभी कभी उनके अधरोंकी कोर फड़कने लगती थीं, किन्तु धूमिल दीपोंके प्रकाशमें कोई उसे नहीं देखपाया । अनुवर्त्तिनी जड़-सी खड़ी पृथ्वीकी ओर देखरही थी । संघस्थविरने एकबार भी उसकी ओर नहीं देखा ।

संघस्थविरने फिर कहा—‘अमिताभके चरणोंकी शपथ खाकर कहो क्या मैं झूठ कहता हूँ ?’

एकत्रित भिन्नु हिल उठे । फुसफुसाहट तीव्र होनेलगी । शब्द सुनाया देगया—‘नहीं, आप ठीक कहते हैं ।’

भिन्नुसमुदाय फिर चुप होगया । उत्तेजित आनन्दने उठकर आगे बढ़कर कहा—‘माननीय भिन्नुगण ! आर्य्य उपासिकाएँ ! भदन्त संघस्थविर ! मैं पूछता हूँ क्या मनुष्यकेलिए अपने आपको धोखा देना आवश्यक है ?’

सबकेसब चौंकपड़े । संघस्थविर एकबार विचलित होगये, किन्तु उन्होंने शीघ्रही अपनेको वशमें करके कहा—‘भिन्नुआनन्द, तुमपर मारने सरलतासे विजय प्राप्त करली है ।’

‘नहीं आर्य्य’, आनन्द कड़कउठा—‘आप औरोंको धोखा देसकते हैं किन्तु आनन्दभिन्नुको कोई धोखा नहीं देसकता । आप सोचकर बोलें । नन्दिनी यदि संघके अपवादका कारण मानली गयी है तब तथागतके अनुवर्त्ती जो इस संघमें रहते हैं वे सब पशु हैं—नृशंस नहीं, बलि पशु, कुत्ते जो पूँछ दबाये खड़े रहते हैं । क्या गौतमकी अनुवर्त्तिनी, आर्य्य भिन्नुणी उपासिकाका इस प्रकार अपमान करना संघकी मूल शक्ति और

## अनुवर्त्तिनी

तेजका अपमान करना नहीं है ? भगवान् तथागत.....’

संघस्थविर घृणासे अपना नीचेका होंठ दबातेहुए हँसपड़े । उन्होंने कहा—‘भिन्नुआनन्द, तुम नारीके मोहमें फँसगये हो विवेकहीन !’

समस्त समुदाय विवेकहीन शब्दका उच्चारण करता ठठाकर हँसपड़ा । उस हँसीमें आनन्दभिन्नुकी पुकार डूबगयी । अन्धा बूढ़ कौत्सुभ चुप था । वह कुछभी चेष्टा नहीं कर रहा था । समुदायकी हँसी गूँज-गूँजकर बढ़रही थी ।

अनुवर्त्तिनीने देखा अन्धकारमय श्मशानमें कंकाल अट्टहास करके तारडवका आयोजन कर रहे थे । वह काँपगयी । भीरु नारी डरगयी ।

आनन्द साहस करके आगे बढ़ा—‘संघस्थविर, आप अपना मोह मुझपर क्यों मँढ़ रहे हैं ?’

‘मैं ?’ संघस्थविरने हँसकर कहा—‘गौतमके इस पवित्र संघकी शपथ करके कहो कि तुम नन्दिनीपर आसक्त नहीं हुए हो ?’

आनन्दभिन्नु सकुचगया । बोला—‘आर्य्य, यह संघ पवित्र नहीं रहा ।’

संघस्थविरने गरजकर कहा—‘आर्य्यभिन्नु समुदाय सुने ! आनन्द भिन्नु संघको अपवित्र कहते हैं ।’

एक भिन्नुने उठकर कहा—‘आनन्दभिन्नु अपने पथसे गिरगये हैं ।’

आनन्दभिन्नुने सिर झुकालिया । समस्त समुदाय फिर जोरसे हँस पड़ा ।

संघस्थविरने कहा—‘भिन्नुआनन्दको दण्ड मिलेगा । किन्तु अनुवर्त्तिनीको संघसे निकाल दिया जाय ।’

नन्दिनी अबतक चुपचाप सब देखतीरही थी । अब वह आगे बढ़कर आँखोंमें आँसू भरे बड़ी सौम्यतासे बोली—‘संघस्थविर !’

## अनुवर्त्तिनी

संघस्थविरने कठोरतासे कहा—‘नारी, यह लीला अभिशाप है । पवित्र गौतमके अनुवर्त्तियोंको तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं । आगकी चिनगारीको कोई घरमें नहीं रखता ।’

नन्दिनीने तड़पकर कहा—‘तो क्या संघमें मनुष्य नहीं तिनकोंका ही ढेर है ।’

संघस्थविर क्षणभरको चुप होगये । उन्होंने कहा— ‘तुम आगसे भयानक पापसे भी निर्भीकमना हो ।’

अनुवर्त्तिनी चिल्लाउठी—‘संघस्थविर, आपकी बुद्धि भ्रष्ट होगयी है ।’

‘मुझे तुम्हारे उपदेशोंकी कोई आवश्यकता नहीं है ।’ संघस्थविरने उत्तर दिया । ‘तो मैं’, नन्दिनी सारा बल लगाकर संघको कँपातीहुई बोली—‘आर्य्यसंघको पापकी आगमें भस्म होताहुआ ही देखूँगी । एक उपासिकाका अपमान करना खेल नहीं । बुद्ध, धर्म और संघकी समस्त शक्ति एकसाथ महाध्वंसकी इन बर्बर पीड़ाओंके विरुद्ध उठखड़ी हाँगी । आप गौतमके अनुयायी बनते हैं ? आप बिना कारण ही मेरा अपमान कर रहे हैं ।’

नन्दिनीका मुँह लाल होगया था । उसका शरीर थरथर काँपरहा था । भिक्षु क्रोधसे विह्वल होउठे थे । संघस्थविर कुटिलतासे हँसपड़े । बोले—‘आर्य्य भिक्षु-समुदाय सुने ! यह नारी क्या कह रही है ? क्या हम इन बन्दरघुड़कियोंसे भयभीत होकर पराजित होजाँय ?’

समस्त समुदाय अट्टहास करउठा ।

नन्दिनी काँपतीहुई बोली—‘नीच संघस्थविर तुम ……’

‘संघस्थविर और नीच ?’ किसीने कड़ककर कहा—‘निकलो नारी संघसे……’

समस्त समुदाय नन्दिनीकी ओर मुड़गया । नन्दिनी दोनों हाथ

## अनुवर्तिनी

खोलकर पुकारउठी—‘आनन्द, कहाँ हो तुम ? आनन्द ?’

किन्तु आनन्दके बढ़नेके पहलेही भिन्नुआने उसे संघस्थविरके इङ्गितसे पकड़लिया था । वह व्यर्थही छूटनेकेलिए बल करनेलगा ।

बादल गरजनेलगे । घटाटोप अन्धकार छायाहुआ था । राह नहीं सूझरही थी । बिजली कड़ककर भयङ्करता बढ़ातीहुई आकाशमें महान विलोड़न कररही थी । भिन्नु नन्दिनीको धकेलकर बाहर लेचले । आनन्द चिल्लाउठा—‘नन्दिनी ! प्रिये !’

भिन्नुआने दाँतोंसे जीभ काटला । वे धोलउठे, ‘आनन्दभिन्नु, शान्तं पापं ! शान्तं पापं !’

भिन्नुआने नन्दिनीको बाहर निकालकर द्वार बन्द करलिया । भीम-काय द्वार चर्गपड़ा ।

इसी समय संघमेंसे भिन्नुआने कहीं अश्वोंकी टापें जल्दी-जल्दी खटखटकर बजतीहुई सुनी । बिजली चमकरही थी । आकाश हाहाकार कररहा था । और जब कुछ क्षण बाद अन्धे कौत्सुभने कहा— ‘नन्दिनी सचमुच गयी क्या ?’—तो कोई सचके सिंहद्वारपर तड़ातड़ लोहेके घनोंका प्रहार कररहा था । बाहर कोलाहलके ऊपर भिन्नुआने दग-दग-दग करके वृत्तोंके काटनेका भयङ्कर रोपित शब्द उन्मत्त होकर गूँजतेहुए सुना । अस्त्रों की भङ्कति महाकालानलके प्रकाश-सी वहाँ व्याप्त होगयी । भिन्नु काँपउठे । लौह-घनोंका रव मानों वज्रपर वज्रका तुमुल प्रहार था । उस गम्भीर, विकट निर्घोषको सुनकर भिन्नुआंका हृदय दहलगया । वे एक दूसरेका मुँह देखने लगे । बिजली आकाशसे प्रलयके डमरुके समान कड़ककर कहीं दूरपर गिरी । बादल आपसमें टकरागये । गम्भीर मूसलाधार वर्षा होनेलगी । अन्धकार दूना होगया ।

घोर शब्द करता सिंहद्वार अर्धकर टूटगया । आक्रमणकारियोंका

## अनुवर्तिनी

स्वर घोर कोलाहल करता दिग्दिगन्तको बधिर कर उठा। घोड़े दौड़ने लगे। बादल आकाशमें गरजते हुए हाहाकार कर उठे।

[ १० ]

अन्धकारमें कुछ कराहें आस्मानसे टकरा रही हैं। संधारामके बाहर के भागमें स्तूपके पास अनेक घोड़े हिनहिनाकर पृथ्वी रौंद रहे हैं। जगह-जगहसे लपटें उठकर हाहा खारही हैं। प्राङ्गणमें स्थान स्थानपर शव पड़े हैं जिनके रक्तसे समस्त प्रस्तर भीग गये हैं। बुद्धकी प्रतिमा खण्डित होकर भूलुण्ठित पड़ी है। तालपत्रांके जलनेकी चिंगांध व्याप्त हो रही है। शस्त्रांको खड़खड़ाहटसे अब भी आकाश गूँजर रहा है।

कठोर सैनिकांके शरीरांपर ऊनके वस्त्र कभी-कभी उनके साथ चलती उल्काओंके प्रकाशमें चमक उठते हैं जिसे देखकर संधारामकी प्राचीन दीवारें स्तब्ध-सी छाया बनकर काँप उठती हैं। यवन सैनिक कहीं-कहीं बैठकर एकसाथ खा-पी रहे हैं जिन्हें देखकर उनके एक-आध साथी भारतीय नाक सिकोड़ रहे हैं। तब कोई यवन सैनिक कहता है—‘हमारे देशमें भेद नहीं होता। हम सब मुसलमान भाई-भाई हैं। कोई ऊँच-नीच नहीं है।’

भारतीय इसे समझ नहीं पाता। सैनिकोंकी बर्बरतामें उनकी एकता एक शक्ति-सी लगती है। तभी आते-दिनने बादलोके वस्त्रांको उजालेके हाथसे एक ओर हटा दिया। नीला आकाश झाँकने लगा। धीरे-धीरे भोर होगयी। एक प्रकोष्ठमें बहुमूल्य कालीनपर एक यवन बैठा है जिसके चारों ओर अनेक सैनिक खड़े हैं। मदिराकी गन्ध उस प्रकोष्ठसे निकल-निकलकर बाहर अलिंद में भी फैल रही है।

यवनराजने उठतेहुए अपने साथके एक भारतीय क्षत्रियसे कहा—  
‘क्यों, उस अनिन्द्य सुन्दरीका क्या हुआ ? कलरात अन्धेरेमें वह व्यर्थ ही घायल होगयी। बच तो जायगी ? बहुत सुन्दर है वह।’

## अनुवर्तिनी

एक सैनिक यवनने कहा—‘जी, वह पागल होगयी है।’

यवनराज हँसपड़े। उन्होंने कहा—‘हिन्दू स्त्री तो बात-बातपर पागल होजाती है। किन्तु, उसने मुड़कर क्षत्रियसे कहा—‘मेघराज, तुम स्त्रियोंको गेरू पहनाकर साधू बनादेते हो ? तुम यौवनका रस नहीं लेते ? हमारे देशमें ऐसी स्त्रियाँ आँखोंमें पलती हैं। अद्भुत है तुम्हारा देश !’

मेघराजने सिर झुकालिया। सब बाहर आगये। प्रांगणमें नन्दिनी को लिये दो यवन सैनिक खड़े थे। उन्होंने यवनराजको प्रणाम किया और जयध्वनि की।

हठात् नन्दिनी बल करके उनसे छूटगयी और रोतीहुई सामने ही पड़े एक शवसे लिपटकर रोनेलगी।

यवनराजने देखा वह एक भिक्षुका शव था। उसके सुन्दर मुखपर तलवारोंके घाव थे। उसने इधर-उधर देखा। नन्दिनी रोते-रोते कहनेलगी—‘तुम्हें छोड़कर चलीगयी थी देव ! तुम्हारा कहा मैंने नहीं माना स्वामी ! मुझे क्षमा करो !’

यवनराजने मुड़कर क्षत्रिय मेघराजसे कहा—‘यह स्त्री क्या कहरही है ?’

मेघराजने कहा—‘सर्दार ! यह स्त्री कुलटा है, कोई वेश्या है अथवा अनाचारिणी है। यह इस संघका कोई भिक्षु है। इस भिक्षुणीका इससे कुछ अनुचित सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि भिक्षुणी किसीभी पुरुषकी पत्नी बनकर नहीं रहती।’

‘ओह !’ यवनराज ठठाकर हँसपड़े। हमारी शत्रुनमसे भी सुन्दर है ये ! तुम्हारे देशमें स्त्री पत्नीत्व भी त्यागदेती है। यह सुन्दर युवक सिर मुँड़ाकर क्या करता था यहाँ ? भगवान्का भजन ? हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं होता।’

नन्दिनी एकाएक चिल्लाउठी—‘स्वामी, मैं तुम्हारी ही पत्नी हूँ, मैं

अब कहीं नहीं जाऊँगी तुम्हें छोड़कर, मुझे क्षमाकरो आनन्द .....

एक यवनने प्रवेश करके कहा—‘सर्दार, अपार रत्न राशि इस मन्दिर में मिली है ।’

‘अपार !’ यवनराजका मुख विस्फारित होगया । उन्होंने कहा— ‘मेघराज, तुम्हारे देशमें मन्दिरोंके आदमी बड़े लोभी होते हैं । हमारे देशमें तो ऐसा नहीं होता । इतने धनका यहाँ ये लोग क्या करते हैं जब खाते भी नहीं पीतेभी नहीं ?’

और वह फिर हँसपड़े । अचानक उनकी दृष्टि फिरी । उन्होंने देखा भिक्षुके शवपर स्त्री निष्प्राण-सी पड़ी थी, जैसे इस आलिंगनसे उन्हें संसार को कोईभी शक्ति अलग करनेमें असमर्थ थी । उनके मुँहसे केवल इतना निकला—‘तुम्हारा देश तो केवल अद्भुत ही है मेघराज ! यहाँ तो स्त्रियाँ बोलते-बोलते मरजाती हैं ।’

मेघराजने फिर सिर झुका लिया । उस समय बाहर जयध्वनि होरही थी ।

×

×

×

होशमें आनेपर उस ध्वंस और मुर्दोंके ढेरमेंसे एक अन्धा घायल बृद्ध आदतके मुताबिक चिल्लाउठा—‘अनुवर्तिनी, पानी.....’

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला । बृद्धने पहलेसेभी अधिक ज़ोरसे गला सुखातेहुए चीख लगायी—अनुवर्तिनी ई ई ई .....!’

अन्तिम अक्षरको खण्डहरकी ईंटें भी पुकारउठीं । दूटा ध्वस्त संघा-राम चिल्लाउठा, किन्तु फिरभी कोई उत्तर नहीं मिला ।

बृद्ध कौत्सुभ वहीं तड़पने लगा । आसपासके वातावरणसे शब्दका अजस्र प्रवाह होरहा था—अनुवर्तिनी ई ई ई ई ई .. ...मानों उस ‘ई’ का कहींभी अन्त नहीं था ।

## काई

पतिका चुनाव करनेकेलिए दुनियाकी आम बातोंको जाननेकी ज़रूरत होती है। डॉक्टर लक्ष्मणका यह कहना सुधाको बहुत ज़ैचा। डॉक्टर लक्ष्मण अभी अपनी प्रैक्टिस जमानेकी ही कोशिश कर रहे थे। उनको अक्सर शिकायत रहती कि वे इंग्लैंड नहीं जा सके। लड़ाईने उनके सब अरमानोंको एक धाँयसे, एक गरजसे बिल्कुल नेस्तनाबूद कर दिया था। और अब वह कहते समाजका सुधार करना पुरुषोंके हाथमें उतना नहीं है जितना स्त्रियोंके। स्त्रियोंकी अँगरेज़ी अच्छी होनी चाहिए। जैसे हमनेकी बजाय मुस्करानेसे औरतोंकी खूबसूरतीमें चार चाँद लग जाते हैं, हिन्दीकी बजाय अँगरेज़ीसे वही काम निकलता है।

वे कहा करते—‘आज हिन्दुस्तानमें जो ज्वार आया है उसमें नारीने भी अपनी चूड़ियोंमें वेड़ियोंकी झनकार सुनी है। यह समझना भूल है कि वह आदम और हव्वाकी तरह ईश्वरकी पहली रचना है, वह भी क्रमागत विकास का एक स्वरूप है।’ फिर वे जोशमें आकर कहते, ‘नारीको एक देवी समझना है एक राक्षसी। ठाकुरने उसे अर्द्धनारी - अर्द्धस्वर्गीय माना है। नारीके मुँहपर एक हँसी रहती है लेकिन भीतर एक अंधड़ और रहस्य। वह आजतक नहीं समझी जा सकी।’

और नतीजा निकालकर वे कहते थे—‘आदमी बेवकूफ है, औरत पागल।’

इसको सुनकर सब अचरजसे देखते थे और सब हँसते थे, लेकिन डॉक्टर अपने विचारोंपर दृढ़ थे।

सुधाने डॉक्टरको परले सिरेका पहुँचाहुआ माना और अँगरेज़ीका

अखबार पढ़ने लगी। एकसे शुरू किया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि लायब्रेरी में जाकर वक्त को पूरा करने के लिए दर्जनों पर नज़र गिरने लगी।

पब्लिक पार्क के बाँये तरफ़ के अर्द्धचन्द्राकार पेड़ों के पीछे पीले रङ्ग के उस पुराने ज़माने के गिरजे-जैसे पुस्तकालय में उसके आने-जाने से पहले के मुक़ाबिले में रौनक बढ़ गयी।

सुधा पढ़ती, और फिर शब्दों से लड़ती। पहले ही दिन चलते वक्त लायब्रेरियन ने नम्र शब्दों में निवेदन किया—‘कृपया अखबारों में निशान न लगाया कीजिए। आपको अपनी पसन्द दूसरों पर जताने की इच्छा हो तो मुझे मुँह ज़बानी बता दिया करें। होसकता है जो ख़बर या बात आप बहुत महत्वपूर्ण समझें वह वास्तव में ऐसी न हों।’

सुधाने आँखों को संकुचित करके घूरा और ‘माफ़ कीजिए, मुझे मालूम नहीं था’ कहकर अपना चमड़े का बेग उठा लिया और बाहर चली आयी।

किन्तु अखबारों का पढ़ना जारी रहा। डॉक्टर लक्ष्मण अपनी राय बनाते हुए कहते कि रूमानिया का तेल ही इस लड़ाई का असली कारण है। न रूमानिया में तेल होता न हिटलर ऑस्ट्रिया पर हमला करता, न अँगरेज़ों से निकल जाने पर रूस ज़ोर देता।

‘तेल!’ वह गम्भीर होकर कहते—‘तेल दुनिया की एक नायाब चीज़ है। जो चीज़ चिकनी हो या आग पकड़ ले वही तेल है। तेल कई तरह का होता है, मगर तेल नहीं तो कुछ भी नहीं। तेल से ही दुनिया चलती है, तेल ही से आपका बदन काम करता है…………’

तब इन्टर की विद्यार्थिनी सुधा मन में विस्मय करती कि डॉक्टर कहाँ से बात शुरू करता है और कहाँ उसका अन्त होगा यह कोई नहीं समझ पाता, लेकिन ऊपर से कहती—‘डॉक्टर तेल न कहिए सत् कहिए तो कुछ हर्ज होगा?’

‘नहीं; लेकिन,’ डॉक्टरने बात काटकर कहा—‘सत् तो स्वयं कोई वस्तु नहीं, तुम असलमें शक्ति और चालनमें सुविधा देनेवाली वस्तुमें भेद कर रही हो...’

‘नहीं, डॉक्टर!’ वह कह उठी, ‘मैं आपका मतलब समझ गयी। आपने ठीक कहा है। मैं तो उसी बातको सरल शब्दोंमें समझनेकी कोशिश कर रही थी।’

तब डॉक्टर सन्तुष्ट-से कह उठे—‘तब तो तुम ठीक कहती हो। तुम बिल्कुल ठीक हो।’

और लम्बे चेहरेका हरिश्चन्द्र, जो अपनेको सबसे ज़्यादा अक्लमन्द समझता, दोनोंकी बातें सुन-सुनकर मुस्कराता। वह कम बोलता और वास्तव में इस मौनने उसे समाजमें काफ़ी स्थिरता दे दी थी। वह दिलमें सवाल-जवाब करता था और सोचलेता कि इस बातका यह सबसे अच्छा उत्तर है लेकिन ‘यह’ बात हमेशा उसे बादमें सूझती और गाड़ी छूटनेके बाद कौन नहीं चाहता कि वह भी मदरास चला जाए, खासतौरपर अगर वहीं तकका टिकट भी हो।

हरिश्चन्द्र गोरा और सजीला युवक था। उसे सदाही बिल्कुल नपेतुले फ़ैशनसे लैस देखकर लोग उसे एक धनी नवयुवक समझते थे। वह कौन था, क्या था, यह बहुत कमको ज्ञात था। जिस दिन सुधा उसके बँगले पर गयी थी उस दिन केवल उसकी माँने उसका स्वागत किया था। एक बड़ी बहिन थी, लड़ाईमें ‘वैकआई’ बन गयी थी और हरिश्चन्द्र उसकी बात कहकर हँस उठा था। सुधा कुछभी नहीं समझी थी। उसने विस्मयसे देखकर कुछ मोचा था किन्तु फिर डूबते सूरजकी सुनहली किरनोंमें जब पेड़ोंकी लम्बी-लम्बी छायाओंसे घिरे वे चाय पी रहे थे क्षणभरको सुधा ठिठक गयी थी। उसने पहली बार देखा था कि हरिश्चन्द्र देखनेमें आकर्षक था। इससे अधिक उसने कुछ नहीं सोचा। रातको जब वह बहुत देर तक पढ़ती उसने

देखा अवश्य था कि कैसे उसके घरके सामने जो स्कूलकी अविवाहिता मास्टरनी रहती थी बत्ती बुझाकर आँधरेमें टहला करती थी अकेली - अकेली - सी और कभी-कभी कोई उसके पास रातके एक बजे आजाता था। सुधा सोचती एक बजेतक प्रतीक्षा ! और जैसे उसके जीवनमें वह पहलू नहीं था, वह झट खिड़कीसे हटजाती और उसकी निगाह अस्त्रबारपर जापड़ती। दुनियाका हर एक देश अपनी स्वतन्त्रताकेलिए युद्ध कर रहा है और हिन्दुस्तानमें अभी तक ये मास्टरनी ! तभी उसे डॉक्टरकी बात याद आती कि कोई भी देश तभीतक गुलाम रहता है जबतक उसके रहनेवाले स्वयं पूरी तरहसे आज़ाद होनेके योग्य नहीं होजाते। बात उसके दिमागमें गूँजती और फिर डॉक्टर का अकेला जीवन उसके सामने चलने लगता। डॉक्टरका छोटा-सा मकान जिसका वह पन्द्रह रुपया किराया देता था ! मकानदारकी चौबीसों घंटेकी—लड़ाई-लड़ाई तककी—ईश्वरसे केवल एक प्रार्थना थी कि डॉक्टर कूँच कर जायें और वह मँहगायी और जगहकी कमीका फ़ायदा उठाकर मकानको कम-से कम चालीस रुपयेमें उठा दें, जो अपनी तरफ़से वह करनेमें असमर्थ था—चूँकि सरकारके भारत - रक्षा - क़ानूनमें वही एक बात जनताकेलिए फ़ायदेमन्द साबित होसकी थी। सुधा घृणासे नाक सिकोड़लेती। कैसे हैं ये लोग जो अपनी नीचताको अच्छे शब्दोंमें सजाकर कहनेसे बाज़ नहीं आते ! और घड़ीमें दो घंटे बजते, उनकी प्रतिध्वनि बनकर जेलका घंटा बजता, जिसकी गूँजके समाप्त होनेके पहले कहीं औरसे ढन-ढनकी आवाज़ आती और क्षणभर शहरमें जैसे घन्टे ही घन्टे बजते और सुधा पैरोंपरसे लिहाफ़ गले तक खींचकर आँखें बन्द करलेती। तारे रातमें ठंडसे सिकुड़कर काँपने लगते, ठंडी ठंडी हवा बहती रहती और थोड़ी देर बाद ज़मीन और आस्मान दोनों पलकोंकी तरह मिलकर अन्धकार, महाअन्धकारमें लय होजाते।

( २ )

‘दुनिया कभी सत्यको नहीं पहचान सकती, क्योंकि अपने-अपने

स्वाथोंमें पड़े मनुष्य कभीभी अपने दायरोंके बाहरकी बात नहीं सोचसकते।' डॉक्टरने धूपमें कुर्सी खींचकर बैठतेहुए कहा।

हरिश्चन्द्र सिगरेटका धूँ आ उगलते-उगलते कहउठा—'क्या मत-लब ? ज़रा स्पष्ट करियेगा डॉक्टर !'

डॉक्टरकी आँखोंके नीचे गड्ढे पड़गये थे। उनका सुनहरी फ्रेमका चश्मा जो अर्द्धगालोंकी एक नुमाइश थी उनकी खाकी आँखोंके ऊपर एक अपने ही ढँगकी चीज़ थी। उन्होंने शाल अच्छी तरह ओढ़कर उत्तर दिया—'मनुष्य संकुचित है क्योंकि वह अपनी सत्ताको बनाये रखनेके काममें अच्छा-बुरा छोड़कर लगा रहता है।'

सुधा चुप बैठीरही। आज इतवार था। वह फ्रुसंतमें थी। लॉनपर ग्रास झलकरही थी। फूटती किरनें पेड़ोंके बीचमेंसे ग्रासको पकड़नेकेलिए झुकी आरहीं थीं। दूर क्षितिजपर अबभी कोहरा जमाहुआ था, नीला-सा, ऊदा-ऊदा-सा। हरिश्चन्द्रके बँगलेका यह बराम्दा सड़ककी तरफ़ था।

डॉक्टर कहतारहा—'जानते हो न इस पञ्जाबी होमियोपैथ डॉक्टर को ? इज़ारोंमें खेलता है। क्विनीनको होमियोपैथिक दवा बताकर बाँटता है। M. B. 693 का पाउडर बनाकर उसे अपना चूरन बता-बताकर देता है, और लोग उसके पीछे भागते हैं। जबसे मेडीकल स्कूल कॉलेज होगया है डाक्टर मरीज़ोंकी, लोगोंकी बिल्कुल परवाह नहीं करते और फिरभी लोग उन्हींके पीछे दौड़ते हैं। हम लोगोंके पास कोई नहीं आता।'

डॉक्टर एक शुष्क व्यंगकी हँसी हँसा। सुधा ओवरकोटके जेबमें हाथ डाले बैठीरही। हरिश्चन्द्रने कहा—'लेकिन डॉक्टर, आपके पास आना न आना सत्यसे क्या सम्बन्ध रखता है ?'

डॉक्टर चिढ़ककर बोलउठे—'ठीक पूछा है तुमने हरिश्चन्द्र, ठीक पूछा है। क्या ज़रूरत है लोगोंको उन लोगोंके पीछे भागनेकी जो रुपयेके

सामने आदमीकी परवाह नहीं करते ?’

हरिश्चन्द्र कह उठा—‘बच्चे जरूर सवालोंको लेकर अभ्यास किया करते हैं, लेकिन जानका, जान-जैमी चीजपर लोग अभ्यास करना ज़रा कम पसन्द करते हैं।’

डॉक्टरको लगा जैसे हरिश्चन्द्रके मुँहसे बड़ा कड़वा धूँ आ निकल कर फैल गया। वह सुधाकी ओर देखकर कहने लगा—‘देखा सुधा, हरिश्चन्द्र हर चीज़को खेल समझते हैं। एक बात बताऊँ किसीसे कहोगे तो नहीं ?’

दोनोंने आश्वासन-भरे नयनोंसे देखा। डॉक्टरने कहा—‘कल शाम मेरे पास सुधाके घरके सामने रहनेवाली मास्टरनी आयी थी। वह दवा चाहती है कि समाज उसे ठीक समझता रहे। उसके कार्य पाप न होतेहुए भी समाजको शांत होजानेपर जो पाप होजायेगे, इसीलिए वह उनको मिटादेना चाहती है।

‘क्या बात ?’—सुधाने नासमझीसे पूछा—‘क्या हुआ उसको ?’

डॉक्टर ज़ोरसे हँसकर बोले—‘अभी तुम नहीं समझोगी। क्योंकि तुमने अभी दुनिया नहीं देखी। मास्टरनी गर्भवती होगयी है और गर्भमे छुटकारा पानेकेलिए मुझसे दवा चाहती है, जैसे मैंने गर्भ गिगनेकी ही दवाएँ सीखी हैं और कोईऔर भला काम मैं नहीं करसकता। और इसके लिए उसके प्रेमी एक सेठके लड़केने पाँचसौ रुपया मुझे देनेको क़बूल किया है, क्योंकि मास्टरनीके पास लड़केके प्रेम-पत्र हैं जिनके बलपर वह उससे शादी कर सकती है। किन्तु वह सेठके लड़केसे अपना सच्चा प्रेम बताती है और कहती है कि सेठके लड़केमें उतना साहस नहीं है कि मुझसे शादी करले। यदि मैं ज़ोर दूँगी तो उसकी कमज़ोरीका ना जायज़ फ़ायदा उठाना होगा, इसलिए मौजूदा हालातमें भ्रूण-हत्या सबसे ज़्यादा ठीक रहेगी।

डॉक्टर एक जंगली तरीक़ेसे हँस उठा। सुधाने पूछा—‘और डॉक्टर, आप उसे मदद देंगे ?’

डॉक्टर हठात् गम्भीर होकर बोले—‘मैं नहीं जानता मैं क्या करूँगा। हरिश्चन्द्र तुम्हारी इस विषयमें क्या राय है?’

हरिश्चन्द्र चुप बैठा था। उसने एक बार लॉनकी ओर देखा, सड़क की ओर देखा, राह चलतोपर नज़र डाली, जैसे वह सबकी राय लेकर हो, और फिर खाँसकर उसने कहा—‘डॉक्टर, मैं नहीं जानता कि आप मेरे उत्तरसे मुझे कैसा आदमी समझेंगे।’

डॉक्टरने उसे ऐसे देखा जैसे उससे क्या, तुम्हें जो कहना हो कहो।

हरिश्चन्द्रने ऊपर देखतेहुए कहा—‘बात असलमें एक है, और वह है मास्टरनीका भविष्य। बच्चे समाजमें इतने होते हैं कि हिन्दुस्तान उनमें से बहुतोंको नहीं चाहता। ऐसी दशामें सन्तानका प्रश्न बेकार है। अगर भ्रूणहत्या नहीं होती तो मास्टरनी या तो सेठपर ज़ोर डालकर शादी करती है और सदाकेलिए जीवनकी कोमलता खोजाती है या फिर वह बदनाम होती है, नौकरीसे निकालदी जाकर भिखारिन होजाती है। एक पाप करने से अनेक विपमताओंका अन्त होता है, अतः वह काम भी बुरा नहीं रहता। अगर आप मेरी बात मानें तो आप ज़रूर उसे कोई दवा देकर इस परेशानीसे उबार दें।’

डॉक्टरके दिमागमें सौ-सौ करके पाँच चोटें पड़ी और सुधा फट पड़ी—‘तो उसके इस कामकेलिए क्या सज़ा है?’

हरिश्चन्द्र अविचलित स्वरमें बोला—‘क्या यह काम सचमुच सज़ा देने लायक है? आप कहेंगी’ यह दुराचार है। मैं मानता हूँ; लेकिन भूखा और पिंजरेमें बन्द क्या नहीं करता। ज़रा-सा दरवाज़ा खुला नहीं कि उड़नेकेलिए झपटा। और नतीजेमें खटका गिरनेपर टाँगके बल घटोंलटकता है। और मेरे विचारमें एक औरतकेलिए सबसे बड़ी सज़ा है कि वह जब माँ बननेवाली हो उसे स्वयं अपनेही बच्चेका खून करना पड़े।’

उसने तीखे नयनोंसे सुधाकी आंखों की फेंकी । सुधाने पढ़ा जैसे वह कह रहा हो कि यदि तुम उस जगह होती तो क्या करती ? और क्षण भरमें ही परिस्थितिकी गम्भीरता समझकर चुप होगयी ।

डॉक्टर सोचते रहे । फिर बोले—‘लेकिन यह करनेके बाद भी तुम लोग यह न सोचना कि मैंने अपनी परेशानियोंसे तंग आकर पाँचसौ रुपये के लिए ऐसेही एक मनुष्यको मार डाला ।’

हरिश्चन्द्र बोल उठा—‘आप भी कैसी बातें करते हैं, डॉक्टर ! सज़ा वही देता है जो अपनेको अपराधीसे अच्छा समझता हो । जिस समाजमें ज़िन्दे आदमी भूखसे मार डाले जाँय वहाँ एक अनजाने मांसके लौंकेको मिटा डालना कोई बड़ी बात नहीं है । अगर पता चल जानेपर समाज माँ और बालक दोनोंको ही सज़ाके अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता तो क्यों न एककी ही ज़िन्दगी सुधारनेका प्रयत्न किया जाय । मैं आपसे अपने दिल की कसम खाकर कहता हूँ कि आपकी इज़्जत मेरे दिलमें फिरभी बनी रहेगी । और आप ही बताइए कौन-सा है वह इज़्जतदार डॉक्टर जिसने इन्हीं कामोंके बूतेपर शुरूमें अपनी प्रैक्टिस स्थापित नहीं की ? एकबार नस पकड़ली, फ़ौरन वहाँ ‘फ़ैमिली डॉक्टर’ बन गये और फिर चलतीका नाम गाड़ी है ।’

हरिश्चन्द्रने दूसरी सिगरेट जलाली । सुधा खोई-सी बैठ रही । डॉक्टर सोचते रहे और सूखी डालपर काली चिड़िया गर्दन मटकाकर गाती रही । एक उत्तरहीन अभावपूर्ण सन्नाटा घहराकर धूपमें सुबकने लगा ।

( ३ )

जब शामको सुधा इतवारको पुस्तकालय बन्द होनेके कारण घरपर ही बैठकर जी बहलाने लगी उसके दिमागमें तरह-तरहके विचार दौड़ने लगे । धीरे-धीरे एक धूँ आ-सा कोहरा साँसके साथ भीतर-बाहर छा गया

और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकारका बहरापन आकाशसे एक कश-मकश करता बरमनेलगा। वह चुपचाप बैठी खिड़कीसे देखतीरही। दूर दांतल्लेपर बिजलीके प्रकाशमें कुछ दर्जी लड़ाईकी वर्दियाँ सीरहे थे। वह प्रायः चौबीसों घन्टे काम करते और सुधा यही अचरज करती कि आदमी कैसे स्वयं एक मशीन होजाता है। अब तो खैर जाड़े हैं मगर गर्मी, बरसात सबमें वे उसही कमरेमें बन्द रहकर काम करते और करते .....

सुधाने देखा दूर और-दूर बिजलीके खम्भेके नीचे कुछ भिखारी टाटमें लिपटे बैठे थे और उसे मालूम था रात होनेपर वे वहीं टाटमें लिपटे लुढ़क जायेंगे, सोजायेंगे; सुबह उठकर फिर गन्दे मुँह, गन्दे बदनसे भीख माँगेंगे और रात और दिनकी ठंड खाकर भी उनका शरीर नहीं अकड़ता। जैसे कुत्ता बहुत ठंड होनेपर कुँ-कुँ करके फिर मिट्टीमें सिमटकर सोरहता है और एक बार चाँदको देखकर जब अपनी छायासे उसे डर लगता है तो जोर से रोउठता है।

सुधा उन्मन होकर आस्मानकी तरफ देखनेलगी। कुछ नहीं केवल कुछ तारे निकल आये थे। पृथ्वी घूमती है, वे राहपर आते हैं, दीखते हैं फिर ऐसेही नहीं दीखते और सुधाने दृष्टि नीची करली। लालटेनकी लौ तेज करके पामके सामनेवाली दूकानके हलवाईने कुछ आवाज़ लगायी और सुधाने देखा वही बूढ़ा भिखारी और वही औरत खड़े थे, चुपचाप; जैसे कोई मतलब नहीं। सुधा अक्सर उन्हें देखती और उसे उनमें कुछ कौतूहल होता था। औरत बिल्कुल पागल सी थी। बूढ़ा कभी कभी किसीसे बात करलेता था और एक सुबह उमने देखा था बूढ़ेकी गोदमें सर रखकर सड़कके किनारे ही औरत सोतीरही। बूढ़ा कभी उसके शरीरपर झुक कर भयङ्करतासे खाँसता और कभी ऊँघने लगता। औरत फिरभी न जागी, बूढ़ा फिर भी न हटा, और आस्मानसे चिल्ला गिरता रहा, किन्तु सुबह भी मरे नहीं थे उनका ध्वंस नहीं होसका था। बूढ़ा उसे लेकर चलपड़ा

था। ऊँचे उठे कन्धे और लटकी गर्दन, छोटा-सा क़द, और स्त्री जो बगराती, सतराती और क़दम-क़दमपर ठोकर खाती।

सुधाने व्यथासे भरकर एक लम्बी साँस ली और आँखांको ढँक कर हाथोंसे मसलदिया और अन्धकारमें कमरेमें कुछ देखनेलगी। क्या हक़ है हमें इस तरह टंडसे बचकर रहनेका जब इतने आदमी न सोपाते हैं, न जिनका जगना है, न जिनका सोना है; जिनका जागना एक हाहा-कार है, जिनकी नींद एक मूर्छा है.....

वह सोचनेलगी। मनमें अपने - आप भावना उठी कि क्या यह जीवित रहना एक पाप है? क्या हमें भी सब कुछ खोकर बंसाही होजाना है? जब सुख है तभी दुख है। लेकिन यदि दुख ही दुख है तो न कोई ईर्ष्या करनेवाला है, न कोई दूसरोंके लिए व्यथित होनेवाला। यह जो स्वयं पीड़ित हैं, ये किसी औरकी चिन्ता नहीं करते, केवल इन्हें अपना ही ध्यान, अपने पेटका भयानक ध्यान-भर रहता है।

किसीके सीढ़ी चढ़नेकी आवाज़ हुई और सुधा प्राकृतिक रूपसे ही पुकार उठी—‘कौन? भइया?’

‘अरे, अँधेरेमें क्या बैठी है?’ कहते हुए एक युवकने स्विच दबा दिया। एकाएक उजाला होजानेसे सुधाकी आँखें पलभरको बन्द होगयीं और जब उसने आँख खोलकर देखा तो भइया बिछेहुए बिस्तपर बैठे पैर हिलाते हुए सिगरेट जलारहे थे। दोनों एक - दूसरेको देखकर व्यर्थ मुस्कराये और भइयाने एक बार धूँआ छोड़कर कहा—‘तूने सुना सुधा, मैंने नौकरी छोड़दी?’

‘छोड़दी? क्यों? कैसे? कब?’ सुधाने घबराकर सवालोंने बाढ़ मचादी। उसके दिमागमें एक उथल-पुथल मचउठी।

भइयाने नीची दृष्टि करके कहा—‘कल मुझे तुमसे कहनेका वक्त ही न मिला। सेठ हरनारायणके लड़केने कल साढ़े - छः सौकी नौकरी

से इस्तीफा दे दिया क्योंकि वे मेरे पीछे लड़ गये थे । एक अँगरेज़ ने मुझे बहुत बुरी गालियाँ दी थीं और जब रिपोर्ट की गयी तो सब बड़े अँगरेज़ अफसर उसहीकी तरफ़ बोलने लगे । उनके छोड़नेके कारण मैंने भी छोड़ दी ।’

बात खत्म होगयी, किन्तु फिरभी इसलिए खत्म नहीं हुई, क्योंकि बातका समाप्त हो जाना आगेके जीवनका हल किसी तरह भी नहीं निकाल सकता था । सुधाने धीरेसे कहा—‘अँगरेज़ोंका बर्ताव तुम्हींसे बुरा था या सबसे ?’

‘सबसे । किन्तु मैं इसे सह नहीं सका ।’ आज भइयाके आदर्श त्याग का महत्त्व सुधाकी समझमें नहीं आया । वह स्त्री थी और उसे अपनेपनका कहीं अधिक खयाल था । अँगरेज़ कौनसी ऐसी बात कर रहे हैं जिसमें हिन्दु-स्तानियोंकी इज्जत बढ़ रही थी ! जब आदमी नौकरी करने जाता है पेटकेलिए तब इज्जत तो वह पहलेही छोड़ आता है । या तो खुलकर बग़ावत करे, या करे ही नहीं । सब एक-दूसरेसे हुजूर कहते हैं क्योंकि कहना पड़ता है ।

और उसने भइयाकी ओर देखा जो ऐसे बैठे थे जैसे मैंने जो किया है उसकेलिए बिल्कुल लज्जित नहीं हूँ । मैं कुत्ता नहीं हूँ जो टुकड़ोंकेलिए ठाँकर खाता फ़िरूँ । दोनोंने एक-दूसरे को देखा और दोनोंने एक-दूसरेके विचारोंको आँखोंसे ही पढ़ लिया ।

सुधाको उसपर दया-सी हो आयी और भइयाको एक उलझी-सी भुँझलाहट । सुधाने कहा—‘मुझे कल दो महीनेकी फ़ीस दाखिल करनी है ।’

भइयाने हँसकर कहा—‘अरी कल तक मैं हँसता था कि घरमें अखबार लेकर तू पुस्तकालय जाती है, मगर शायद जल्दही अब तुम्हें पुस्तकालयमें ही अखबार पढ़नेपर मजबूर होना पड़ेगा ।’

सुधा थोड़ी देर चुप रही । उसने कहा—‘अब ?’

भइया बोले, ‘अबके अमरीकनोंमें कोशिश करूँगा । जल्दीही मिलेगी । सौ न सही, पचास ही सही—दो सौ तो अब क्या मिलेंगे—मगर

मिलेंगे तो ! सुनते हैं अमरोकन अङ्गरेजोंके मुक्ताबिलेमें अच्छे हैं ।’

सुधाको विश्वास नहीं हुआ । हाँगे भी तो मुक्ताबिलेमें ही हो सकते हैं ।  
वैसेतो जो नौकरी देगा वह ज़रूर दाबना चाहेगा, तबतक जबतक नौकर  
मालिकका फ़र्क़ न मिटजाय ।

भइया हँसपड़े । बोल उठे, ‘अरी तू क्यों घबराती है पगली । सोचती  
होगी सेठजीके लड़केने ठोकर मारी तो उनका दूसरा पैर भी मज़बूत था,  
यहाँ तो झनझनाहटसे ही गिरगये । तेरा तो ब्याह मैं कर ही दूँगा कहीं  
अच्छी-सी जगह और फिर-की-फिर देखी जायगी । अकेलेकी क्या है ?  
मगर तू न कहेगी, अपनी पसन्दसे करूँगी मैं तो... पढ़ी-लिखी जो है  
न ?’ और भइया ठठाकर हँसपड़े । सुधा लाजसे मुस्करा उठी । मजबूरियोंमें  
भावी सुखकी यह कल्पनाएँ जो कभी पास नहीं आतीं, और जीवन सरकता  
चलाजाता है ! कैसी मृगतृष्णा ! कैसी मरीचिका ! अनन्त अंधकार, आकाश  
में धू धू जलता निर्धूम उन्माद, या पागलपन.....

—४—

डॉक्टरने सुधाकी दो महीनेकी, तथा इम्तहानकी फ़ीस शीघ्र वापिस  
मिलजानेके वायदेपर तक़ल्लुफ़ दिखातेहुए देदी और उस दिन सुधाने पत्थरों  
के नीचे दबे दिलमें पहली बार एक कचोट महसूस की जिसमें बन्धनोंकी  
पीड़ाका वेग होता है । वह थोड़ी देर देखतीरही और डॉक्टरने उसकी ओर  
न देखतेहुए अपनी सिगरेट जलाकर चुपचाप एक लम्बी साँस ली ।

सुधाने अपने होठोंपर जीभ फेरी और एकाएक पूछबैठी—‘डॉक्टर  
मनुष्य सुखी कब होता है ?’

डॉक्टर जैसे तैयार नहीं थे । उन्होंने चौंकर उसकी ओर देखा  
और वे धीरे-से कहउठे—‘जब मनुष्य कुछ नहीं चाहता, जब उसे कोई  
चिन्ता नहीं रहती ।’

‘यानी जब आदमी मरजाता है ।’

डॉक्टर फिर चौंके । उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया । वह उसे धूरते रहे, जैसे क्या मतलब ?

सुधाने उनका मतलब समझकर भिन्नकते - भिन्नकते कहा—  
‘डॉक्टर, मनुष्य सदा चिंतित रहता है । आप मनुष्यके शरीरकी सारी बनावट जानते हैं, इसीसे आपसे पूछती हूँ । आदमी कभी चैनसे नहीं रहता । वह क्यों कुछ करना चाहता है ?’

‘क्योंकि वह रहना चाहता है ?’

‘लेकिन क्यों ?’

‘क्यों ? क्योंकि वह पैदा होता है ।’ जैसे डॉक्टरने सारी समस्या सुलझा दी ।

‘यही तो पूछती हूँ डॉक्टर,’ सुधाने दृढ़तासे कहा—‘वह पैदा क्यों होता है ?’

‘क्यों होता है ?’ डॉक्टर हँसपड़े । उन्होंने कहा—‘यह तो मैं नहीं बता सकता कि क्यों होता है । डॉक्टर होनेकी हैसियतसे यह ज़रूर बता सकता हूँ कि कैसे होना है । और यह ‘कैसे’ ही वास्तवमें ‘क्यों’ का पहलू अपने में छिपाये है । यह ‘कैसे’ ही ‘क्यों’ का असली उत्तर है । बिना ‘कैसे’ के ‘क्यों’ कभी सामने नहीं आता, क्योंकि केवल ‘क्यों’ एक दुःस्वप्नकी घुटती पुकार है जिसका जवाब आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी नहीं निकाल सके और वह अबभी ‘कैसे’ में ही उलझ रहे हैं । ‘क्यों’ का उत्तर बहुतोने दिया है, किन्तु आगे आनेवालेने उन्हें ही काट दिया और ‘क्यों’ का उत्तर सारहीन हाहाकार-मात्र रहसका ।’

सुधा देखतीरही । डॉक्टरका जादू आज उसपर असर करनेमें असफल होगया । उसके मनको तृप्ति नहीं हुई । मनुष्य जो चाहता है वही

नहीं होपाता, जहाँ वह घास समझकर पैर रखता है वहीं कीचड़ निकलती है। और उसका पैर आगे बढ़नेकी बजाय धँसा रहजाता है।

डॉक्टरने सिगरेट फेंककर यूरोपियन ढङ्गसे कुछ अशराफ़ जम्माइयाँ लीं और दोनों हाथोंको सीधा किया और उद्धिग्न-से कमरेमें टहलनेलगे। कभी-कभी वह सुधाको देखते थे और जैसे कुछ कहना चाहते थे किन्तु शब्द न मिलनेके कारण परेशान थे।

सुधाने ही मौन तोड़ा। उसने पूछा—‘डॉक्टर, मास्टरनीका क्या हुआ?’

‘होता क्या?’ उन्होंने मेज़पर टिककर कहा—‘जो होना था वही हुआ।’

‘यानी?’ घड़ीके अलारमकी तरह सुधाकी बात टनटना उठी।

‘यानी दवाने उसके पापको धोदिया, लेकिन आजही सुबह ऑपरेशन करके मुझे एक और काम करनापड़ा। वह दवाएँ ग़लत तौरपर पांगयी और ज़हरने गर्भाशयमें प्रवेश करलिया। इसलिए मुझे उसकी चीरा-फाड़ी करनीपड़ी और अब वह कभीभी माँ नहीं बन सकेगी, चाहे तांभी नहीं। इसकेलिए सेठके लड़केने मुझे पाँच-सौकी जगह कुल तीन-सौ रुपया दिया है। ज्योंही उसे मालूम पड़ा कि बच्चा नहीं रहा उसने मास्टरनी से कुछ कहा। ऑपरेशनके बाद जब कोईभी डॉक्टर उसकी देख-रेख करसकता था उसने मुझे कुल तीन-सौ रुपया दिया और वह मास्टरनी एक-दम चुप होगयी। दोनोंने मुझपर जुर्म लगाया और मास्टरनीने कहा कि मेरी ही ग़लतीकी वजहसे वह अब औरत नहीं रही।’

डॉक्टर पराजित-से हँसपड़े। फिर कहउठे—‘रुपया मैं जीवनका सबसे बड़ा उद्देश्य नहीं समझता। मैंने उनके भलेकेलिए किया था वह सब, लेकिन.....’

सुधाने बात काटकर कहा—‘तो भला तो आप करचुके न ? फिर कैसा अफसोस ? कर्म करना ही तो आपके अधिकारमें था। फल न मिला, न सही।’

डॉक्टर तिलमिला उठा। इस समय वह चाहता था कि कोई उसकी प्रशंसा करे और उसीकी एक शिष्याके समान लड़काने उसके मर्मपर ऐसी चोट की थी। उसने आहत स्वरमें कहा—‘यह रुपया नहीं था, मेरी मेहनत का फल और उनकी ईमानदारीकी परख थी।’

सुधा निगश होंगयी। उसका व्याकुल हृदय भीतर ही-भीतर चिल्ला उठा—‘यह सब भूठ है। यह सब भूठ है।’ किन्तु फिर कॉलेजकी फ्रांस जेबमें पुकारउठी—चुप ! चुप !

—५—

भइयाकी नौकरी सचमुच लगगयी। वे सुबह साढ़े छः बजेके कड़कते जाड़ेमें घरसे चलदेते और शामके पाँच, साढ़े पाँच बजे लौटते। एकसौ बीस रुपयेकी तनख्वाह बुरी नहीं होती। तीन ही दिनमें यह कहींसे रुपये लेआये और डॉक्टरको सुधाने बड़े बड़े धन्यवाद देतेहुए लौटादिये। सुधा ने अपनी एक पुगनी जरमी उधेड़कर उनकेलिए दस्ताने बनादिये ताकि साइकिलपर जाते वक्त हाथ न ठिठुर जाँय और रातके पराँवठे लेकर वह गये गये कि फिर शाम तककी गर्या। मगर हालत बदस्तूर गिरोरही। पूरा महीना बिना पैसेके चलाना था। घरमें आटा था, मगर इधर सब्ज़ाके बड़े दामोंपर पैसा डालना कठिन था, कि दूध-दही सुपना होंरहे थे। दरिद्रताकी यह छाया सुधाके मनपर वैसीही चढ़ी जैसे चूल्हेपर चढ़े बर्तनके तलेपर कालिमा। अखबार बन्द करदिया गया। पहले जो दो-सौ आते थे उनमें पाई-भर भी बचाना हराम था। रसोई करनेवाली निकालदी गयी और वह भार सुधापर ही आपड़ा। घर और बाहरके बोझकी कशमकशमें उसकी आत्मा

अब रुद्ध-सी छूटपटा उठी। शामको वह भइयाको खाना खिलाकर पुस्तकालय जाने लगी और इस कारण लौटतेमें कभी-कभी अंधेरा भी हो जाता किन्तु अब अखबार पढ़तेमें उसे सान्त्वना-सी मिलती जैसे यह सब एक महान् संग्राम था जिसका परिणाम मुक्ति है, मनुष्यकी मुक्ति।

किन्तु हरिश्चन्द्र धीरे-से मुस्करा उठा। उसने कहा—‘तुम समझती हो सोवियटमें सब सुखो हैं?’

‘मैं नहीं जानती, मगर तुम सुख कहते किसे हो?’ उसने पूछा।

‘मैं?’ हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया। ‘सुख और दुखको केवल संसर्गसे उठनेवाली प्रतिक्रिया समझता हूँ। साथ-साथ हैं तो यह है, वह है; दूर-दूर हैं तो न यह है, न वह है; और यह वह कुछ स्वार्थकी सिद्धि सफल है तो सुख है, नहीं है तो दुख है।’

सुधाको यह उत्तर अच्छा लगा। एक बार मनमें आया अपने घरेलू कष्टोंका उससे बखान करके जी हल्का करले। किन्तु फिर सहसा ही हिम्मत नहीं हुई कि कहीं इसमें कोई अपना अपमान न हो, कहीं हरिश्चन्द्र उसे गरीब न समझले। हरिश्चन्द्र बकता रहा—‘संसर्ग ही सब कष्टोंकी जड़ है। मैं एक ज़मींदार हूँ, छोटा मोटा। कभी अपनी ज़मीन देखने तक नहीं जाता। जो आज गरीब किसान है उसे कभी यह मालूम नहीं होता कि एक मिन्टर हरिश्चन्द्र भी होंगे जो मेरी मेहनतके बूतेपर सिगरेट पी रहे होंगे। मगर जो है सो तो है ही। वह सब भी ठीक है। पैसा है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं।’

सुधाने उसकी ओर देखा। अनजानमें ही उसकी दृष्टिमें एक स्नेह छलछला उठा था। नारीके मनकी अनजानी वेदनाको निर्दोष रूपमें प्रगट कर देनेवाला पुरुष कम से कम एक प्यार भरे दृष्टिका उत्तगाधिकारी अवश्य होता है। हरिश्चन्द्रने निर्भय स्वरमें कहा—‘मेरे मना करनेपर भी मेरी बहिन ‘वैक आई’ है और मैं जानता हूँ उसकी टॉमियोसे दोस्ती है, लेकिन क्या

करसकता हूँ मैं ? वह मुझसे पैसा नहीं चाहती, कुछ नहीं माँगती, किस तरह दवा सकता हूँ उसे ?

इतनी बड़ी बात कहकर भी उसे सङ्कोच नहीं था । उसने बातको समाप्त करतेहुए कहा—‘मैं उसका भाई अवश्य हूँ, किन्तु उससे घृणा करता हूँ क्योंकि वह मुझसे घृणा करती है । वह पुरुषोंसे घृणा करती है और फिर भी पुरुषोंकी ओर खिंचती है । जिस आदमीसे वह प्रेम करती थी वह एक अङ्गरेज़ था जिसने उसे एक ठाँकर मारदी थी और एक बच्चेकी माँ बनने केलिए छोड़गया था । वह माँ नहीं हुई, लेकिन पुरुषोंपर उसने कभी विश्वास नहीं किया और मैं कोशिश करके भी उसे चाह नहीं सका ।’

सुधा निस्तब्ध बैठी सुनतीरही । कैसे हैं ये लोग ! कोई एक-दूसरे से प्यार नहीं करता ! केवल अविश्वास, केवल घृणा ! और परस्परका व्यवहार केवल एक धोखा, या फिर अत्याचार ! पार्कमें उस दिन चाँदनी फैलीहुई थी । दोनों बेंचपर बैठे बातें कर रहे थे । मादक हवा चलरही थी । बात करते-करते हरिश्चन्द्रने सुधाका हाथ पकड़कर कहा—‘एक बात बतलाओ सुधा, क्या तुम बहुत सुखी हो ? मैंने तुम्हें सदा एक जिज्ञासुके रूपमें देखा है । तुम हो, तुम्हारे भइया हैं । मैं धनको बहुत बड़ी चीज़ मानता हूँ । आज जो अविद्या, गँवारपन, कर्मनापन और जाने क्या क्या है यह सब धनहीनता के कारण हैं, सब धनके भेद हैं । मैं नहीं जानता मैं कहाँतक सही हूँ; किन्तु तुम सदा मुझे सुखी दीखती हो ।’

सुधा एकाएक हँसपड़ी । कैसा भोला है यह युवक ? जो हाँ ना का फ़रक सुनकर नहीं पहचान सकता । उसने अपने सामने एक बालक देखा । अनजाने ही उसके कन्धेपर हाथ रखकर वह बोलउठी—‘अरे हम लोग असलमें गरीब आदमी हैं, गरीब आदमी । सुखी हम कहाँ ? सुखकी बातें तो तुम लोगोंको करनी चाहिए, जो ज़मीदार हैं, बड़े लोग हैं । हम तो ज़िन्दे हैं, ज़िन्दे !’

‘मैं ज़मींदार ?’ और हरिश्चन्द्र ठठाकर हँसपड़ा। ‘बड़ा आदमी ? शायद कपड़े देखकर लोग ऐसेही ग़लत खयालोंमें पड़ेरहते हैं ? बड़लेमें रहता हूँ जो ! और सब, सब कर्जसे लदा है, गले तक कर्जा है, कर्जा, कमीने सेठोंने छोड़ा ही क्या है ..... ’

और वह ज़ोरसे हँसपड़ा। उसकी भराई हँसीमें उसका आहत अभिमान टुकड़े-टुकड़े होकर शीशेकी तरह चाँदनीमें चमकउठा था। वह फिर कहउठा—‘सोचती होगी जान-जानकर और क्यों फँसते हो ? मगर जिसके मुँहमें खून लगचुका हो वह घास नहीं खासकता। यह रोगी तपेदिकसे मर कर ही चैन लेसकता है, इसका इलाज असम्भव है। बिल्ली दूध पी नहीं पाती तो लुढ़काये बिना उसे चैन कब मिलता है। एक खानदानकी इज़्ज़त भी तो होती है न ? माँ तो अभीभी अपनी ऐंठन उसीपर क़ायम रखसकी हैं।’

और वह फिर वही ज़हरीली हँसी उगलउठा। सुधा निस्पन्द सुनतो रही। क़िला धपसे मिट्टीमें बैठगया था। चारों ओर धूल ही धूल उड़रही थी। वैभवको अन्धकारने डसलिया था।

—६—

दूसरे दिन सुबह ही सुधा डॉक्टरके घरकी तरफ़ चलपड़ी। डॉक्टर बैठे कुछ सोचरहे थे। इतनी सुबह सुधाको देखकर उन्हें कुछभी अचरज नहीं हुआ। सुधाको रातभर नींद ठीक न आसकनेके कारण उसकी पलकें भारी होरही थीं और डॉक्टरके सन्देहकी इस बातने पुष्टि करदी। वह अप्रसन्न-सा मुख लिये बैठरहा। सुधा अपने आप कुर्सी खींचकर बैठरही।

डॉक्टरने देखा—कैसी सीधी बनकर बैठी है। लेकिन कल शामको सीधी न थी जब पार्कमें चाँदनीमें हरिश्चन्द्रके साथ हाथमें हाथ डाले बैठी थी। अनजाने ही डॉक्टरकी इस नारीके प्रति दबी वासनाएँ इस अचानक पराजय पर भड़ककर ठोस विद्रोह और प्रतिहिंसा बनकर खड़ी होगयीं जैसे आज वह

कुछ सुननेको तैयार न था। सुधा चुपचाप बाहर देखती रही। उमन कहा।  
‘डॉक्टर जीवन कितना कठिन है !’

डॉक्टरके मुँहपर व्यग्यसे एक मुस्कान खेलगयी। उन्होंने कहा—  
‘परिस्थितियोंकी उलझनको सुलझन बनादेना ही मनुष्यका सुख होता है सुधा देवी ! ठीक है न ?’

सुधाने चौंककर डॉक्टरकी ओर घूरा। किन्तु डॉक्टर बेताब होकर उठखड़ा हुआ। मेजकी दूसरी ओर धीरे धीरे जाकर हाथ बाँधकर वह खड़ा होगया। सुधाने सुना— वह कह रहा था—‘जान-जानकर गलती करनेवाले को कोई क्षमा नहीं करसकता। मैं सब जानता हूँ, सब देखचुका हूँ। दवा लेने आयी हो सुधा ? मैं नहीं देसकता। तुम भलेही मुझे कुछ कहलो। मेरे लिए एक बारकी भूल काफी है, बहुत काफी है। मैं बार बार वैसी गलती नहीं दुहरा सकता। मुझे तुमसे कोई हमदर्दी नहीं है। यदि तुम पाप करते हुए नहीं हिचक सकती तो समाजको तुम्हें दण्ड देनेका पूरा अधिकार है।’

सुधा कुछ नहीं समझी। वह बोल उठी—‘कैसा दण्ड ? कैसी दवा ? क्या जानते हैं आप डॉक्टर ?’

‘तुम मेरी आँखोंको नहीं झुठा सकतीं सुधादेवी ! मैंने आँखोंसे तुम्हें हरिश्चन्द्रके साथ पार्कमें कल रात देरतक बैठे देखा है। अगर चाँदनीका दोप है तो मैं कोई दवा कैसे देसकता हूँ ? है तुम्हारा पाम पाँच सौ रुपया ? डॉक्टर लक्ष्मण तुम्हारे कुमा कटाक्षोंका न भिखागी था, न है, न रहेगा। जाओ, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं करसकता।’

‘ओह, समझी। तो आप मेरी कोई मदद नहीं करसकते ?’ सुधा एकदम ठठाकर हँसपड़ी। निर्दोष कभी किसीसे नहीं दबता। ‘तब तो आप बड़े समझदार हैं। डॉक्टर तुम्हारा भेजा सड़गया है और तुम उसकी बदबू से परेशान होकर समझते हो कि साग समार सड़ गया है। बेवकूफ, तुम्हारे समाजमें हरएक पापका न्याय देनेकी ठौर है, और इसीलिए आज सत्ता

केलिए विषमताओंके इस कारागारमें पाप ही पुण्य होगया है। इतिहास इसकेलिए तुम्हें कभी भी क्षमा नहीं करसकेगा।' वह अपने अपमानसे विचुब्ध-सी फुझार उठी थी। डॉक्टर हतबुद्धि-सा देखता रहा। सुधा तेज़ी से उसके घरसे निकल गयो। बाहर हवा ठण्डी थी, तेज़ थ। राहके लोग कपड़ोंकी कमीके कारण सिसकारी भरते-से चलरहे थे। ढालके किनारेके ताल पर कुछ बच्चे ढेले फेंकरहे थे। ढेला गिरते ही काई फटजाती थी, फिर उसके डूबनेपर जुड़जाती थी। बच्चोंके ढेले कभी उस तालकी काई नहीं फाड़सके। और तालकी काईर मच्छर रहते हैं, मनमनाते हैं—ज़हरके छोटे-छोटे क्वातिल टुकड़े, लेकिन दूरसे ताल कितना सुन्दर लगता है, कितना मोहक... .. जों भीतर-ही-भीतर सड़ चुका है... .. गल चुका है... .. दुर्गन्ध और घृणाकी एक दलदल-सा, जीवनकी कलुषित पराजय-सा... .. निर्वीर्य... .. निर्जीव... ..

## नरक

१

### मैं एक चौमंज़िला मकान हूँ

उस मकानको देखकर यही लगता है कि वह किसी मुसलमाने सरायके रूपमें बनवाया होगा, मगर कालान्तरमें उसपर कई जमगयी और वह काला होगया। तब कुछ दिन तो उसके बारेमें यह अफ़वाह उड़ी कि वह लालाओं की बगीची होगया है। मगर उसके भाग्यमें इज्जत बची थी कि उस नामको पूर्णतया सफलतापूर्वक अपने ऊपर सिद्ध न करसका और वह ऐसा न रहा जहाँ शामको रोज़ भंग घुटती। इसके कारण तो कई थे, मगर किस्सा अमलमें यह था कि टॉमसन साहब जिनकी कि नोलकी कोठियाँ थीं उनके नाती हैरिसन साहब कोठियोंके बन्द होनेपर खर्चान चला सकनेके कारण पहले महायुद्धके समय उसको लाला हरदयालके नाम बेचगये थे। और जो हरदयाल जवानीमें सरपर पट्टे, लम्बी कलम, चिकनका अंगरखा और काली किनारी की धोती पहनता था अब बुड्ढा होकर नातिनीकी धोती पहनता है। कन्धेपर पापका गद्दर है और मुँहमें गाली। बेटे और नातीसे चिढ़ है क्योंकि उन्हें कमा-कमाया धन मिलजायेगा। इसलिए घरसे अलग रहता है। धुँधली होगयी हैं आँखें, मगर मजाल है कोई उसपर खोटा रुपया चलाले। वह दो रुपये लेकर संसार पथपर चला था, आज लाखोकी जायदाद खड़ी थी। क्या नहीं किया जवानीमें—जूआ नहीं खेला कि शौक नहीं किये—मगर जो किया अपने बूतेपर किया। किस चीज़से रुपया नहीं कमाया?—चुङ्गीके चुनावमें उसीको वोट दी जिसने सबसे ज़्यादा रुपया दिया; बीमा कराया दुकानका और आग लगाकर जल्दीही तमाम रुपया लेलिया; धेली बिना

सूद ग्याये वापिस नही ली — जैसे गजपूतकी नलवार एक बार निकलकर बिना खून पिये फिर म्यानमें नहीं ठुसती ।

मकानके चारो तरफ एक बड़ी बगीची है जिसके एक ओर लम्बा मैदान है सरकारी । बगीचीमें अनेक पेड़ हैं : कहीं आमके, कहीं जामुनके; कहीं घनी छाँह, कहीं बिल्कुल नहीं । दो-एक नल हर जगह नज़र आ ही जाते हैं, और मकान बड़ी अजीब तरहसे बनाहुआ है । यां कहिए कि वह चारो ओरको बसाहुआ है । चार मंज़िल हैं । नीचेकी कोठरियोंमें गरीब लोग बसते हैं ।

आज हस्पतालको यही रहतेहुए पैंतालीस बरस होगये, किन्तु उसे सिवाय रुपयेके और किसी बातकी चिन्ता नहीं । बगीचीके मन्दिरमें ही वह अक्सर बैठा रहता है । मकानको देखकर लोग अचरज करते हैं । युगान्तर से वह स्तब्ध मूर्ति खड़ी है । पंखी पत्तोंमें घुसे रहते हैं, जानवर उसकी मोरियां और छज्जांके बीच या पाछे और नीचे ।

पूछा है—तू कौन है ? और वह प्रतिध्वनि कर पूछता है—तू कौन है ? मानो पूछनेका अधिकार सबको नहीं होता । मगर कभी कभी रातके सनसन सर्मांगणकी श्रिल-श्रिल ध्वनिमें कोई कहने लगता है—मैं मकान हूँ, मैं समाज हूँ, मैं मानव हूँ ... सबही तो मुझमें हैं । न मैं पथका आदि ही हूँ, न अन्त ही ।

—२—

### पहिली यातना : ग़दर

सुधीर अपने कमरेमें पड़ा पड़ा दीवारपर मकड़ियोंकी कारीगरी देखता रहा । एक दिन था जब उसके पास सबकुछ था । किन्तु आज वह केवल एक क्लर्क था । कॉलेजमें जो गर्म गर्म बहस की थीं उनका नतीजा आज केवल पैंतालीस रुपयांका भयानक बोझा था ।

उमने मन ही मन कहा जो नहीं जानता वह भी भिमना नहीं चाहता, जो जो जान-जानकर भिमता है वह कितना निर्बल है ! आज पगजय और मगनन्त्रताने उसे कुचल दिया था। यह भी तो सामाजिक जीवनका एक सदस्य ही था। बगलमें हा एक कमरा लेकर भिड़िल स्कूलके मास्टर साहब रहते थे। वे अक्सर कहा करते—‘देखिए सुधीर बाबू, अपनी मर्जीसे कुछ नहीं होता। हमारे पिता एक जमींदार साहबके यहाँ कारिन्दा थे। तनख्वाह आठ रुपये महाना पाते थे। मगर ऊपरी आमदनी इतनी थी कि हम दसवें दर्जे तक बेखोफ पढ़ें। उम्र साल वे स्वर्गवार्मा हुए और हम नौकरी ढूँँढा किया। मगर नाकरी ? गमगम ! हमारे पिता अङ्गरेजी एक अच्छर नहीं जानते थे, लाकन काम, बड़े में बड़े काम, उठाने इशारेपर चलाये। बड़े साहबसे मिलना, कलक्टर साहबसे मिलना। हमने उनका तमाम कमायी धूलमें लुटाया, और फिर कुछ नहीं। तब प्राइवेट ट्यूशन करना शुरू किया, और आज आपकी दुआसे मास्टर होकर दिखा दिया।

सुधीर सुनता और कुढ़ता। मास्टरका जीवन इतना दयनीय था कि उसे उमपर घृणा होआती थी। मगर मास्टर था कि कभी उसके मुँहसे कोईभी शिकायत नहीं निकलती थी। नीचेकी मंजिलमें यही दो कमरे अच्छे थे। उनके नीचेही गरीब लोग रहते थे। उनकी कोठरियोंकी दुर्गन्ध कभी कभी उसके कमरेमें भी आधुमती था। ऊपर ही कुछ अच्छे कमरे थे, और उनमें कौन रहता था यह, यद्यपि वह जानता था, वे लोग नहीं जानते थे, न उन्होंने कभी उसे बुलाया ही। अपने यही ले देके पढ़े-लिखोंमें एक मास्टर साहब थे, और या फिर वे मज़दूर जो पहले तो उससे डरते थे मगर धीरे धीरे दोस्त होचले थे। उन्हें मालूम था कि बाबू निर्फ पैतालीस रुपये पाता है। दोनों वक्त खाकर, खास तौरपर साफ कपड़े पहननेको उसके पास कुछ नहीं है। और इसमें उसका कोई दोष नहीं, क्योंकि वह पढ़ा लिखा है।

सुधीरका असन्तोष उसकी अपनी अभिशप्त विवशता थी। वह मन-

## नरक

ही मन कुढ़ता कि कोई ऊपरवाला उससे कमा भी बात नहीं करता । जब कभी वह मास्टर साहबसे कविताकी बात करने लगता, मास्टर साहब सुनाने लगते, “अजी साहब, अब तो लोगोंको कविताका शौक ही नहीं रहा । पहले जब हम पढ़ते थे तो वह वह अन्तार्जरी होती थी कि देखनेवाले दङ्ग रह जाते थे । अबभी जब गाँव जाते हैं एक आध तो जम हा जाता है ।”

और सुधीर वहीं बात खत्म करदेता । किन्तु मास्टर साहब कहते—  
‘सुधीर बाबू, कवि तो गिरधर हुए हैं । क्या क्या कुण्डलियाँ कहा है !  
वाह; लाटापर तो कमालकर दिया है !’

सुधीर क्रोधसे दूसरी बात छेड़देता । मास्टर साहब फिरसे सहयोग देने लगते ।

×

×

×

किसीने द्वारको थपथपाया । सुधीरने पड़े-पड़े ही पूछा—‘कौन है ?’

‘अरे भाई मैं हूँ’—कहतेहुए खड़ाऊँकी खट खटसे कमरेको गुँ जाते हुए मास्टर साहब घुस आये । सुधीर ग्याटपर बैठगया । मास्टर साहब भी बैठगये ।

‘क्यों कुछ तबियत खराब है क्या ?’ मास्टर साहबने धीरेसे पूछा ।

‘हाँ कुछ ऐसीही थी ।’

‘सो ही तो मैंने कहा । दिया जले हाँ तुम तो आज खराटे भरनेलगे ।’

मास्टर साहब हँसदिये । सुधीर मन-ही-मन भुनभुनाया । आज मास्टर साहब कुछ प्रसन्न-से थे । अपने आप बोले—‘तुमने सुना यार ?’

‘नहीं तो; क्या हुआ ?’

‘ओ, कोई खास बात नहीं,’ मास्टर साहबने उपेक्षा दिखातेहुए कहा—‘ऐसे ही ।’

‘तो भी तो ! कुछ हम भी तो सुनें ?’

‘आज बुलाया था ।’ मास्टर साहबने ऊपर इशारा करतेहुए कहा ।  
‘हाँ !’ और फिर सिर हिलाया, उनकी चुटियाने उनकी गर्दनको दो-चार  
हल्की हल्की थपकियाँ भी दीं ।

सुधीरने विस्मित होकर पूछा—‘यार किमने बुलाया था ?’

‘ऊपर जो बाबू रहते हैं उन्होंने ।’ मास्टरने गर्वसे कहा ।

‘क्यों ?’

‘उनकी एक छोटी भी बच्ची है । उसे हिन्दी पढानी है । उस्ताद,  
चार रुपये महीना देगे । घरके घरकी बात है । हम तो कहते हैं मेल जोल  
बढ़ेगा तो अपना ही तो फायदा है । क्यों, है न ?’

सुधीरने मास्टर साहबकी प्रसन्नता देखी और उसने सिर झुकालिया ।

मास्टर साहब हर्षित-से कहतेरहे—‘आदमी बड़ा सज्जन है । पाँच  
सौ पाता है, मगर घमण्ड छू तक नहीं गया । साहब, यह तो खानदानका  
असर होता है । आप अपने अच्छे खूनके हैं तो रुपयेकी गर्मी आपको जल्दी  
नहीं चढ़ सकती । परमात्मा देता उन्हाको है जो वास्तवमें योग्य होते हैं ।’

सुधीरके दिमागमें बड़ी बड़ी कब्रे थी । यह बात भी उसके दिमाग  
में एक लाश बनकर उतरगयी ।

— ३ —

## दूसरी यातना : ईश्वरकी दया

मन्दिरमें भाँभ बजतीरही । रातके एक बजे तक कीर्तन होतारहा ।  
कहनेको तो सेठ रामलालने भी आनेको कहा था किन्तु वह अभीतक नहीं  
आये थे । उनके पिताने खोन्चा लगा लगाकर इतना रुपया इकट्ठा करलिया

था कि नौ बेटोंके अलग अलग मकान खड़े थे । बेटोंकी बहुएँ आयी थीं । जबसे पाँचवीं बहू आयी घरमें बैठवारा शुरू होगया । घनश्याम सिर पीट कर रहगया । बहू मिडिल पास थी । तब लोगोने समझाया कि पढ़ी लिखी लड़कियाँ ऐसीही होती हैं ।

भाँभ बजतीरही और राधे-राधे श्याम श्यामका सम्मिलित स्वर गूँजतागहा ।

सुधीरको लगता जैसे दिनभरके शोषणके बाद यह प्रयत्न वैसाही था जैसा कि कोई विद्यार्थी सालभर तो कुछ नहीं पढ़े और इम्तहान पास आनेपर ईश्वरसे कहे : मुझे पाम करदे, मुझे पाम करदे । किन्तु मास्टर साहब कहते—‘पुण्यकी बात है । भगवानका स्मरण है । औरकुछ तो कलियुगमें कर ही नहीं सकते, नाम तो ले लेना चाहिए । जमाना ही बदलगया है तो कोई क्या करे ?’

राधेश्याम राधेश्याम, श्याम श्याम, राधे राधेका अविगत स्वर पीपल के पेड़में खड़खड़ पैदाकर स्याहीवाले आस्मानकी मलेटा मी छायामें डोल उठता था । धीरे-धीरे एक बूढ़ा आकर स्वरमें स्वर मिलाने लगा । उसको देखकर पास बैठा घीसा ज़रा खिसककर भीड़में मिलगया और धीरे धीरे हटने लगा ।

ज्यांही घामा द्वारपर पहुँचा, हट्टे-कट्टे घुटमंडे बावाने पूछा—‘घीसा, कहाँ चला ?’

‘कुछ नहीं । जरा योही । अभी आया ।’ उमने मकुचते हुए कहा ।

किन्तु बावाने उसका हाथ पकड़कर कहा—‘तुम्हागी कमम, जाना नहीं ।’

घीमाने अपगधीके स्वरमें कहा—‘अच्छा तो चलो, न जाऊँगा ।’ उसके शरीरमें एक सिकुड़न सी दौड़गयी । साहस भग और भीतर जाकर बैठगया ।

बूढ़ा हरदयाल हाथमें माला लिये बैठा था। पासही एक नया मकान बनवारहा था। मकान धर्मादा और सूदके साथ-साथ उठरहा था। घासा हरदयाल का कर्जदार था। पहले महीने रुपया देरमें पाकर वह गरज उठा था—‘क्या बे, हमीमे साहसाह बनने चला है, साले ! और वह दो आने !’

‘मालिक,’ घीसाने कहा—‘वह भी आजायेगे। यह तो जवानकी बात था। यह मा घरवालाको गती छोड़कर उसके कंड़ रग्यके लाया हूँ। वह तो तुम मिले नहीं, जवानकी बात थी, वरना मैं तो कलही देदिये होता ! क्या करूँ लालाजी, फेरी लगाते लगाते देही निचुड़गयी, मगर आमन्दनी का वहा मन्दी !’

‘आर सट्टा लगानेको कौन तेरा बाप तुम्हे पैसे देजावे है !’

‘देखा लालाजी, सुनरहा हूँ देरसे। गालीगुता करोगे तो हाँ ! कोई उज्जत थाड़ेही बेचर्दा है !’

‘अबे, बड़ा साहूकार आया ! खाली करदे मेरी कांठरी; समझा ! खाली करदे। हाँ, क्या कहा मैंने ?’

घासा लौटआया था। घर आतेही जो देखा कि रामस्वरूपका बुखार बढ़ता ही नारहा है, हिमात पस्त होगयी। उल्टीके बाद भी हिचकियाँ बना रहा। वैद्यजीने जो काढ़े दिये वह दो दिन बाद हलकके नीचे उतारना हराम होगया। जाने कौनसी बामारी थी, यही पता न लगा। उसी रात बहूका जाने क्यों गश आगया। और सुबह होते-न होते वह चलबसी। शायद चार पाँच दिनसे वह पेटवाली भूखी रहकर मेहनत करती पगस्त हागया और उसने मगघटमेही जाकर चैन लिया। घीसाने देखा और वह रो न सका। जब वह लौटा तो बूढ़ी महरिया बहूके कपड़े इकट्ठे कररही थी। घीसाने करम ठोक लिये। अन्तमे उसकी फेरीभर आँच आयी। पैर टूटनेलगे। आँखोके सामने अन्धेरा छागया। बच्चा फिर कराह उठा।

उस मांसके लौंदेमें अपूर्व शक्ति थी। उसने आँखोंके सामने लाचागीका धुँधलका हावी करगवा था। बुढ़िया भीतर गयी। बहूकी खँगवागी उठा लायी। वह घीसाके हाथपर धरकर बोली—‘जा लालाके पास जा, इसे धरके कुछ लेआ।’

घीमाने देखा। हाथपर साँप फन तिरछा किये कुण्डली मारे बैठा था। यही उसकी बहूके गलेसे लिपटा रहता था। वह रोदिया।

हरदयाल उस समय मन्दिरमें बैठे थे।

घीसाने झुककर कहा—‘लालाजी, पालागन !’

लालाजीने आँख उठाकर देखा और फिर भजन करनेलगे। घीसा ने खँगवागी आगे रखदी और गिड़गिड़ाने लगा—‘लालाजी अब कभी गुस्ताखी नहीं होगी।’

‘क्या है ? क्या है ?’ हरदयाल चिहँक उठे।

‘बहू गुज़र गयी। बच्चा बीमार है।’

वह चुप होगया। हरदयालने नमीसे कहा—‘अपना-अपना भाग्य है भइया ! वह सबकुछ करते हैं। सामने शिवलिङ्ग था। उसपर कुछ चन्दन आदि चढ़ा हुआ था। घीमाने देखा। कठोर सत्योंने कहा—यह कभी कुछ नहीं करते। किन्तु अज्ञात् भयने कहा—कुछ नहीं करते; तो बता हरदयाल आज कैसे इतना रुपयेवाला है ?’

घीसा बोला—‘सब उन्हीकी माया है ! उनकी दय्यसे दुनिया चलती है !’

हरदयाल माला जपनेलगा।

‘लालाजी, गुजारिम है कि यह खँगवागी.....’

‘कितनेकी है ?’ भजन करते-करते लालाजीने पूछा।

‘तेरह रुपया भर है।’

‘तो क्या है ? कुछ नहीं। खैर तेरी मर्जी। मगर एक बात है। इधर मेरा हाथ बहुत तङ्ग है। सोचता हूँ क्या करूँ ?’

‘महाराज निरास न करना। बच्चा तड़प - तड़पकर मर जायेगा महाराज!’—उसका गला रूँध गया।

हरदयाल जैसे औरतोकी अदाओंपर मरना भूल गया था। वैसेही आँसूसे बहल जानेका लड़कपन भी वह प्रारम्भमें तुकसान उठाकर छोड़-चुका था।

उसने कटोर स्वरसे कहा—‘नखरे नहीं घीसू ! चार आने सूदकी रही।’

‘अजी लालाजी मर जाऊँगा। जानसे ही मर जाऊँगा। तुम्हारी कसम, बुरी मौत मर जाऊँगा। लालाजी तुम्हारे दरवाज़ेका जस है, जो आया वह खाली हाथ नहीं लौटा, फिर आज मेरेहीलिए लालाजी, दया करो……’

‘तब दो आने रुपया लूँगा। समझा ? अब इधरकी उधर नहीं होगी। क्या समझा ?’

अब उसीका मूल नहीं तो ब्याज तो चुकाना ही था। कलका दिन था सो निकल गया। तभी घीसा हरदयालको देखकर खिसकरहा था। उसने धर्मभावसे हाथ जोड़े—‘हे परमात्मा ! हे परमेश्वर ! मेरे बच्चेको अच्छा कर दे !’

कीर्तन समाप्त होगया था। हरदयालने घीमाके कन्धेपर हाथ रख कर कहा—‘परमात्माकी दया अपार है, उसकी मर्हिमा अपरम्पार है।’

घीमाने भक्तिसे मिर झुकालिया। तभी हरदयालने पूछा—‘कहो घीसा बच्चा कैसा है ?’

‘लालाजी, उसकी बीमारीका ही पता नहीं लगता।’

‘अच्छा होजायगा, चिन्ताकी कोई बात नहीं। वह सब अच्छा करते

हैं। उनकी दयासे जीवमात्र चलते हैं। पूर्व जन्मके पाप ही दुनियाको अँधेरेमें डालेहुए हैं। हाँ, अब कबतक देदोगे ?'

‘अभी तो नहीं लालाजी, ज़रा हाथ खुले तो .....’

‘अरे’ हरदयालने टोककर कहा—‘हाथ तो धीरे धीरे खुलता रहेगा। मगर मैं भी तंग हूँ इधर। भैया यों तो काम चलेगा नहीं। अपना मकान बनरहा है न ? आजाइयो उधरही मजूरी मिलेगी, कोई बेगार नहीं है, समझे ! काम भी होजायगा और चुकाना-फुकाना तो हो ही जायगा।’

धीसाने सुना। पुजारी बावाने शङ्खमें श्वास भरा। स्वर गूँज उठा लहरता, भरमाता .....

मन्दिरकी अँधेरी छायामें निस्तब्धता मँडगने लगी। चारों ओर हाय हाय करता सन्नाटा छागया। उस विशाल अनेक मंज़िलोंवाले घरमें लोग चुपचाप सोगये। किसी तरह वे सब जिये जा रहे थे। उनमेंसे किसी का भी भविष्य निश्चित नहीं था। आस्मानकी सल्तनत बनरही थी। मनुष्य ने जैसे पृथ्वीसे मोह छोड़दिया था !

यह भी ईश्वरकी दया थी।

—४—

### तीसरी यातना : परम्परा

दिन थकाहुआ-सा निकला। बगीचीके पेड़ सूने सूने से खड़े थे। बादल अभी-अभी बरनकर बन्दहुए थे। अब वे आस्मानमें इधर-से-उधर भागरहे थे। उनकी सूनी उसासांसे अंतस कुछ कुछ विह्वल होआता था।

चूरा मरगया था। उसका शव कपड़ेसे ढँका रखा था। केवल मुँह खुलाहुआ था। आँखें निकली पड़रही थीं और गालोंपर डरावनी स्याही छायी हुई थी।

हरगोविन्दने बाँसोंको बाँधा और अर्थी सजानेलगा । महरी गेती रही । बाड़ेकी अन्य स्त्रियाँ आँसू बहातीहुई उसे सान्त्वना देनेलगीं । किन्तु उसके आँसू बहे जा रहे थे । वह गा-गाकर रो रही थी । हरदयालने दूरसे सुना और कोंठरी बन्द करके पड़रहा ।

चूरा मर गया था । ज़िन्दगी जबतक रही उसने अपनी बहूको खूब मारा । पर उसमें एक बहुत बड़ी बात थी । किसी दूसरेकी चुगली सुनकर उसने महरीसे कभीभी कुछ नहीं कहा ।

लेकिन जब उसका हाथ उठता था, मजाल थी कि कोई रोक जाय । तब एकवार जब वह जवान थी चूरा अपने दमेकी कशिशमें खाँस रहा था ।

थोड़ी देर बाद भोड़ इकट्ठी होगयी । महरी गाली दे रही थी—  
‘हाय कट्टी खाये, तेरे कीड़ा पड़ें ... ’

जवानीको जवानीने लोहेकी तरह खाँचा । चूराका हाथ उठ गया था ।

गफूराने कहा—‘क्यों वे, क्यों मार रहा है माले ?’

बालिशत-भरके चूराने कहा—‘कतरनीसे कपड़े काट जाकर, बीचमें मत बोलियो, खून होजायगा खून ।

‘अबे हाशकी दवा कर, मुर्गा बनाकर छोड़ूँगा । औतपर हाथ उठाता है : शर्म नहीं आती ?’

‘शर्म आये तेरे माँ-बापको, समझा ? जीभ काटलूँगा जीभ !’

गफूरा बिगड़ गया । हो गये हाँते दो दो हाथ । महरी बेबस बकरी-सी उसकी तरफ देख रही थी और मनमें संशय लिये आनेवाले तूफानको सहनेका साहस भर रही थी । चूराका हाथ बहनेको उठा । गफूराको लोगोंने पकड़ लिया । ‘हाँ हाँ क्या करते हो ?’—भीड़ गरज उठी । गालियाँ चल रही थीं । शमसू कह रहा था—‘हिजड़ा है साला !’ गफूरने बहुतकुछ बजनी गालियाँ दीं और कहा—‘औरत कोई तेरी कुतिया है क्या ?’ मगर चूरा समझानेवालों

के कोलाहलको भेदकर चिल्ला उठा—‘औरत मेरी है कि तेरी ? अब मैं इसे फेरे पाड़कर लाया था कि तू ? मेरी चीज़, फिर तू कौन लाटमाहबका बच्चा है कि बीचमें बोलेंगा । मैं मारूँगा, खोदके गाड़दूँगा । डुकड़े-डुकड़ करके कल्लुआंको गिला दूँगा । तू कौन बीचमें बोलनेवाला आया ?’

‘एक बुजुर्ग आगे बढ़कर गफूगसे कहने लगे— ‘उसकी जोरू, उसकी मलामत । कलकों फिर दोनो एक होंगे, तू किधरका रहेगा तब ? खुदाने जब अकल दी थी तब ये लोग गैरहाजिर थे । तू क्यों बिगड़ रिया है ? तू बीचमें मीजान बैठानेवाला कौन है ?’

सब चलेगये । चूराका हाथ चलनेलगा ।

‘हरामजादी, यहाँ यारोंको लिये मौज कररही है, वहाँ ईंट ढोते-ढोते मरगये !’

बाड़ेमें यही प्रसिद्ध था कि असलमें चूरा अपनी बहूको दिलमें बहुत चाहता है । भाई मरद ही का तो हाथ है : जाने कब उठजाये !

चूरा जबतक जिया महरीको चैन नहीं मिला । उसका सुहाग था कि वह घरोंमें जाकर चौका-बासन करती और कमा-कमाकर लाती । चूरा दमेमें पड़ा पड़ा बर्गिया करता और उन दिनो गिरस्ती उसीपर आ भूलती । इकलौता पन्ना एक नम्बर ढीठ था । वह बापकी भी नहीं सुनता था । उम्र करीब उन्नीस सालकी । आजतक कसम है कि कभी एक पैसा कमाया हो । दिनभर डोलना, आवासागर्दी करना । बापकी नज़र बचायी, माँसे माल ले-उड़ा । फिरतो यह देखो, वह देखो ।

परसां बुखारमें बरति बरति चूराने कहा — ‘देखरी ज़रा उस्तरा तो ले आ ।’

महरीने शङ्कित होकर पूछा—‘क्या ?’

किन्तु चूरा शान्त था। फिर भी स्वभावसे बोला—‘देखरी लाती है कि मैं उठूँ ?’

महरी चुपचाप उस्तग लेआयी। चूरा उसे सिल्लीपर तेज़ करने लगा।

‘क्या करोगे ?’ महरीने पूछा।

चूराने देखा। वह गयी-गुज़री बात-सी एक औरत : अब कहाँ है वह ज़ोर ? पलक झुकगयी। बोला—‘डाढ़में फोड़ा उठा है, काटूँगा।’

महरी चुप हांगयी। उस गन्दे उस्तरेने घाव करके उसपर ज़हरका काम किया। चूरा बर्गनिको पड़गया। दिन आया और अपने निष्ठुर प्रकाश में उसके मुखको पीलापन देगया। सन्ध्या अपने जानेके साथ उसके चेहरे का मारा खून लेगयी और रातने अपनी काली छाया उसपर निःशङ्क हाँकर अङ्कित करदी। रातभर चिल्लाकर आज सुबह चूरा उजालेके पहलेही चल बसा। वह मरा और संसारके नियमके अनुसार फूँक दियागया। जैसे ज़ाँरा चादर हटाकर हड्डियोंको तपा दियागया। महरी रोपड़ी। दो बूँद नीचे गिरी और वह गाउटी—‘हाय मेरे राजा..... !’ बात आयी गयी समाप्त होगयी।

×

×

×

पन्ना देरसे उठता, देरसे नहाता, देरसे ग्वाता और जोभी वह करता देरसे ही करता। महरीके बारहमासी कटोर परिश्रमने स्त्रीत्वमें पुरुषार्थ बन कर प्रकृतिपर भी विजय प्राप्त करली थी। पन्ना रातको ग्यारह-बारह बजे लौटता और अपनी ज़रूरतोंका बखान करता और तब फिर वहीं, फिर वही....

पन्ना धीरे धीरे जुआ खेलनेलगा। कुछभी हो उसे जुआ खेलने से काम। औरत और शराबकी तरह जुआ भी एक नशा है।

रात होगयी । आज महरिका शरीर टूटरहा था । कल्लू हलवाईने पोस्ट मास्टरके लड़केकी शादीमें ठेका लिया था । वह वहींसे पूरी बेलकर आयी थी ।

इसी समय पन्नाने प्रवेश किया । कर्माज फटीहुई, भिगके बाल बिखरे हुए । एक धमाचौकड़ासे वह घुसा और बोला—‘अम्माँ दस रुपये देदे ।’

महरीने कराहकर करवट बदली ।

पन्ना अधीर-सा फिर बोला—‘देता है कि नहीं ?’

महरी कुछ नहीं समझा । लड़केका इस बदतमीजीपर उसे क्रोध हो आया । वह उठ खड़ीहुई और चिल्लाकर बोला—‘देरूँ, सो तेरा बाप ही तो कमा कमाके जमा करगया है, हरामी । यहाँ हाड़ोंसे पत्थर तोड़दिये और लल्लाकी पहुँची लचकगयी ।’

पन्नाने सामने रखे मटकेमें ज़ोरसे ठोकर मारी । मटका तड़ककर टूटगया । मारी दाल बाहर फैलगयी । महरी उसे चिल्लाकर गालियाँ देने लगी और रोनेलगी । पन्नाने कहा—‘देख देदे । चुपचाप देदे नहीं तो कुट्टी करके धरदूँगा ।’

‘अरे देखलिये ! कुट्टी करैगा तू ?’ महरीने दाल घीनतेहुए कहा—‘कमीन नहीं तो कहींका । आया बड़ा लाटका.....’

इसके बाद उसने कुछ अश्लील गालियाँ दीं । पन्ना फिर चिल्लाया—‘देख मानजा । नहीं हड्डी तोड़दूँगा हड्डी मारते-मारते.....’

महरीपर थिजलीकी चोटहुई । वह तड़पकर उसके सामने जाखड़ी हुई और बकनेलगी—‘उठा तू हाथ उठा । आज तू मार ! अपनी माँको मार ! सपूत बेटा ! अरे तेरे मुँहपै आग बराय दूँ.....कढ़ीखाये.....’

पन्नाका हाथ चलगया । परम्परा चल निकली ।

बूढ़े गफूराने सुना और कहा—‘जैसा बाप वैसा बेटा.....’

अब वह बूढ़ा था। उसमें बीच बचाव करनेका जोर नहीं रहा था।

रामधनने सुना। हुक्केपरसे मुँह हटालिया और फिर ठाठके हँसा बोला—‘वाह जिजमान, इस घरमें रोज दिवाली मनरही है। हम तो पहले ही कहते थे .....’

महरी अपमान और विद्रोहसे तड़प-तड़पकर रो रही थी। पन्ना उससे छीनकर सारे रुपये ले गया था। कोठरीमें मटके टूट गये थे। दालमें आटा मिल गया था। उठी और बुखारमें बुबुराते हुए, रोते हुए समेटने लगी। आज उसका हृदय टूक टूक हो रहा था। एकबार उस आदमीकी याद आयी जिसपर उसका दारोमदार था। कैसाभी था अपना आदमी था। उसका तो हक्क था। वह होता तो क्या यह कलका लौंडा या हाथ उठा जाता। ककड़ीकी तरह तोड़ देता कलाई.....

गरीबीकी दुनिया पूँजीके अवैतनिक रूपमें पल रही थी !

—५—

### चौथी यातना : चक्र फिर चक्र

लच्छोका आदमी चलचसा। पहले तो वह रोयी, लेकिन बादको उसके जीवनका सहारा उसका आठवाँ लड़का जो किसी तरह जी रहा था उसपर ममता बनकर केन्द्रित होगया। लच्छो काली थी। यौवन ढल चुका था। बूढ़ी चाची समझती थी कि वह मारी गिरस्ती पाल रही है; लच्छोका दावा था कि उसके बूतेपर चूल्हा जल रहा है। चाचीके लड़के हालाँकि लच्छोके रामचन्दसे बड़े थे फिरभी वह रामचन्दको कभी किसीसे कम नहीं समझती थी। रातके तीन बजेही उठकर हल्दी या गेहूँ या चना पीसने बैठ जाती। कोठरीमें उसकी चक्कीका शोर उसके गीतोंसे मिलकर बाहर तक मँडरा उठता। जब वह बाहर निकलती बालोपर, तनपर पीसनका रङ्ग

चढ़ावाता । उसे फटकारती और एक लोटा पानी ले, मुँह हाथ पाँव धोकर, लैहग फरिया पहनती, मिरपर कनस्तर धरती और बाज़ार के पन्सारी के यहाँ जाकर उसे देकर, पैसे लेआकर, घर आबैठती । दालान में ही देवरानी सुरसुती बैठी रहती । लच्छों के पहुँचते ही उठकर जाती और दो मोटी-मोटी मिस्सी रोटियाँ फटकारती हुई लाती और पानी का गिलास सामने रखकर रोटियाँ उसके हाथ पर रख देती ।

सूखा गेगमे पीड़ित बालक लिये सुरसुती बैठकर अपने पतिकी निन्दा करने लगती । पतली तीखी आवाज़ में उनको दुहराती, कभी बालक को पुचकारती, कभी अपने गमचन्द को डाँटती, रोटी खाती हुई लच्छो सुरसुती की आधी बात सुनती आधी टाल देती ।

सुरसुती कहने लगी—‘जीजी, मैं तो कुछ भी नहीं समझी । कल तो दो आने लाकर दिये थे । मैंने पूछा था कि दिनभर की पल्लेदारी में बस दो ही आने मिले तो बोले हैं !’

लच्छो ने चौंककर कहा—‘पतला-दुबला है तो क्या ? है तो मर्द-मानुस ! दो आने तो हमारा गमचन्द ही कमालेगा ।’

इतना कहकर उसने गर्वसे रामचन्द की ओर देखा जो इस समय दोका पहाड़ा याद करने में अपनी जानकी पूरी ताकत लगाये हुए था ।

सुरसुती ने कहा—‘जीजी, वे तो समझाने से मानते नहीं । बेटा हुआ तबसे तो घर की सुध ही छोड़ दी । और न जाने कहाँ-कहाँ चिन्ता व्याप गयी है राँड कि बस बोलते ही नहीं । मैंने जो कुछ कहा कि मारने-मरने को तैयार !’

इसी समय नलपरसे पानी लाकर चाची आ खड़ी हुई । सुरसुती ने उतरवाया ।

अन्तिम बात सुनकर उन्होंने कहा—‘तू तो बेटी रानी है रानी !

नैक मरदने छूदिया कि इज्जत चलीगयी ।’

सुरसुती सकपका गयी । किन्तु लच्छोने कहा—‘चाची, तुम समझो तो हो नहीं । कलको बेटेका ब्याह करेगा । खिला-पिलाकर आदमी बनायेगा ………’

चाचीने हाथ मटकाकर कहा—‘बेटा न बेटाकी पूँछ । मेरेहीसे आग लेगयी नाम धरा वैसानर ! तुमने भली गधाके कानमें फूँक मारी ! हाय राम !’

लच्छोने बिगड़कर कहा—‘मैं जो उसकी माँ होती तो एक दिनमें बेटाको छटीकी याद दिला देती । समझीं ! तुम्हारेही लाड़ हैं कि ऊधम को लाड़ है, बरबादीको दुलार है ।’

चाचीने ताली पीटकर कहा—‘अरे मेरी छल्लो ! तूहीने न उसे इत्ता बड़ा किया है अपनी छाताके बल पे ? बेटा मन्दोदरी ! जब उसका बाप मरा था तब तू कहाँ थी ? उम बखत तो मैं थी । मैंने पाला है उसे दूध पिलाकर अपना । एक वो आयी है न कि फूलोंपर चलूँगी मैं तो । काम नहीं किया जाता मेरी सौत ?’ सुरसुतीने आँखोंमें आँसू भरके कहा—‘खाजाओ मेरी सौगन्ध जीजी ! मैंने कुछभी कहा है ? देखो मुझे दोम लगारही हैं ?’

लच्छोने तीव्र स्वरमें कहा—‘देखली भैना ! देखली, जैसे पाला है वैसेही वह करम कर रहा है । इननेही बिगाड़ा है उसे । मैं तो चटनी करके धरदेती चटनी !’

चाचीने गरम होकर कहा—‘तूही न एक खैरखा है उसकी ? हम तो दुसमन हैं दुसमन । आयी बड़ी ………’

और चाचीने उसे कुछ गालियाँ दीं । इसके बाद चाची और लच्छोमें स्त्री और पुरुषके गुप्ताङ्गोंके विशद विवेचन करनेवाले शास्त्रार्थ होनेलगे । सुरसुती चुपचाप घूँघट माथेपर सरकाये बैठीरही । इसी समय

सुरसुतीके पति सुरजनने प्रवेश किया। आज उसका सिर घुटाहुआ, आँखें चढ़ी हुई और कदम लड़खड़ा रहे थे। उसने कुछ भी नहीं कहा। एक खटियापर घुटने मोड़कर वह पड़गया। चाचीको आवताव कुछभी नहीं सूझा। वह उसके पास जाकर चिल्लाकर उसे एक-एक बात सुनाने लगी।

एकाएक सुरसुती चिल्ला उठी ॥ सुरजनकी देही काँपरही थी। हाथ-पाँव थरथरा रहे थे। आँखें मुँदरहीं थीं। लच्छो उठी। उसने पास जाकर देखा।

देखते-देखते बाड़ेके लोगोकी भीड़ इकट्ठी होगयी। शमसूने कहा—  
‘जाओ किसी हकीम-अक्रीमको बुलाकर लाओ। यहाँ ग्वड़ी खड़ी क्या कर रई हो?’

लच्छोने सकपकाकर पूछा—‘वह किस्से रुपये लेगा?’

शमसूने कहा—‘येही दो तीन और क्या? इस बखत जानकी बात है। जान है तो जहान है।’

लच्छोने चाचीकी ओर देखा। चाचीने सुरसुतीकी ओर। सुरसुती घूँघट काढ़े बैठी थी। चाचीने कहा—‘सुरसुती लाज तो तेरी तब है जब ये जीता है। अब ला निकालके भीतर से।’

सुरसुतीने घूँघटमेंसे कहा—‘चाची, मेरे पास क्या है जो दूँ?’

चाचीने तड़पकर कहा—‘और चूल्हा अलग करानेको जीभ बहुत बड़ी है न? लेलेके जो भररखी है उसे उगलदे महारानी! नहीं तो यह ही नहीं रहा तो ……’

‘छि: छि:’—बूढ़े रामधनने कहा—‘असुभ बात मत कियाकर तू बिंदिया!’

चाचीने पलटकर कहा—‘तो मामा मेरे भी दो हैं। ये जमा करें और मैं उन्हें भूखा मारदूँ सो मेरे देखते न होगा।’

‘तो है किसके पास ?’ सुरसुतीने घूँघटमेंसे कहा, और वह ज़ोर ज़ोरसे रोनेलगी। हरगोविन्दने कहा—‘क्या देखरही है लच्छो ! बुला किसी स्यानेको । आनन-फ़ानन ठीक करदे ।’

बात पसन्द आयी । तुगन्त भोपा बुलायागया । उसने आकर पहले तो कुछ मन्तर पढ़े फिर लगा उसे झकझोरने । सुरजनके दाँत थोड़ी देर तक तो बजतेरहे फिर वह मूर्छित होकर भूमिपर फैलगया । भोपा बड़ी देर तक चिल्लाता रहा—‘साले तेरी खोपड़ी तोड़ूँ । और बजरंगबलीकी जय । भूतपलीतकी ऐसी तैसी, पास आये तो आग लगायदूँ, हेई बजरंगबलीका साँचा ...’

भीड़ छूटगयी । भोपा अपनी दक्षिणा लेकर उठखड़ा हुआ । जाँघों से ऊँचा लाल घुटन्ना, लाल फितूरी, माथेमें सिन्दूर लगाये जब वह चला तब कमरमें बँधे बड़े बड़े घुँघरू गोलें जैसे बजनेलगे ।

सुरजन मूर्छित-सा पड़ा रहा । रामचन्द बैठारहा । चाचीके लड़के भी आगये । साँझका चूल्हा जला, सुबहका चूल्हा जला, मगर सुरजन वैसेही साँस खींचता पड़ा रहा । कभी-कभी वह जब किचकिचाने लगता लच्छो उमके मुँहमें पानी डालदेती । सुरसुती बच्चेको गोदीमें लिटाये, उसका रोना-बन्द करनेको बारी बारीसे अदल-बदलकर अपने स्तन उसके मुँहमें देती, घूँघट काढ़े, पंखा झलतीरही ।

दोपहर ढले उस उदासीका गतिरोध दूरगया । सुरजनने आँख खोलदीं । उसने पानी माँगा । सुरसुती दौड़कर लेआयी । पानी पिया ।

लच्छोने पूछा—‘अब कैसा है तेरा जी ?’

सुरजनने दूटे-फूटे शब्दोंमें कहा—‘बाबाने दम लगवायी थी जड़ी रखकर, तभी मन खटांगया ।’

लच्छोने कहा—‘तो क्या तू साधू होने गया था जो मुँड़ मुँड़ादिया ? यह किसके नामको रोती ?’

सुरजनने कोई जवाब नहीं दिया। पागलोंकी तरह देखता भर रहा, जैसे कुछभी नहीं समझा। लच्छोने बिगड़कर कहा—‘मैं तो कहूँ मानजा, मानजा, और तू है कि सिरपे ही चढ़ा जावै ! मैं कहूँ मीधे मुँह बातकर, सीधे मुँह, समझी ?’

सुरजनने इधर-उधर देखा और निराश-सा दोनों हाथोंमें सिर थाम कर बैठगया। सुगुती फिर हवा करनेलगी। लच्छोने पंखा छीनकर फेंक दिया। वह ज़ोरसे बोली—‘क्या कही ? अबतो नहीं जायगा बाबा-आबा के पास !’

सुरजनने फिर सिर उठाकर देखा और हताशकी भाँति सिर हिला-दिया।

वह बहरा होगया था।

—६—

### पाँचवीं यातना : विषैला धुँआ

कुछ दिनसे किसी कामसे पुलिसकी छावनीने कुछ दूरपर पड़ाव डालरखा था। उससे बाड़ेमें एक दहशत-सी बैठगयी थी। लोगोंने आपस में ही खूब चर्चा भी की, लेकिन नतीजा नहीं निकालसके। एक दिन छावनी में हजामत बनानेवाला नाई आया था तो वह भी रौब डालगया था। कुछ पुगबिया किसान आकर बाड़ेमें रहनेलगे थे। पहले वह पुलिसमें थे, फिर निकाल दियेगये थे। तबसे पाँच मील दूर एक कारखाने जाते थे और अँधेरे में लौटकर आते। चूल्हा चढ़ाते और चौका काढ़ते। दिनमें मुँहमें अँगूठा डालकर पानी और हरीमिर्चके सहारे ढेरका ढेर सत्तू पेटमें उतार देते।

हरदयालका नया मकान उठनेलगा था। अनेक मजूर वहाँ काम करते और हरदयाल बैठा गिड़की तरह सब देखता रहता। ईंटपर ईंट रखने

का मतलब उसे खूनकी बूँदें देनेके समान था। घीसा वहीं काम करने आता। हरदयालका पठानी कर्ज धीरे-धीरे चुकता जा रहा था या वास्तव में द्रौपदीके चीरकी तरह बढ़ता जा रहा था। जबसे सुरजन बहरा हुआ वह वहीं काम करता। सुरसुती बच्चा गोदमें लिए बैठी-बैठी गिट्टी फोड़ा करती। सुधीर देखता और देखता। उसकी नज़र जहाँ जाकर अटकगयी वह स्थल एक स्त्रीका शरीर था, जवानीसे गदराता। ऊँचा भारी लहंगा, ओढ़नी और नाक-कानसे लेकर शरीरके प्रत्येक अङ्गपर कोई न कोई सस्ता गहना। लगभग अठारह उन्नीस सालकी डंकमारती जवानी। जो आता उससे दिल्लगी करता, जो आता छेड़ता और वह सबकी बात सुनकर हँसती, स्वयं चुहल करती और किसीके आँख मारनेपर लजाजानेका अभिनय करती। कठोर हृदय हरदयाल उसे जब मिलता तब डाँटता और वह उम बूढ़ेकी तरफ़ एक अजीब तरहसे देखती कि बूढ़े हरदयालमें भी एक हल्की कँपकँपी-सी हो आती और क्षणभरको वह भी सीना निकालकर बैठता। अन्य मजदूरोंने उसे देखकर जलती, गालियाँ देती, लेकिन जैसे उसे इन स्त्रियोंसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। जब देखती तब पुरुषोंकी ओर देखती। बिड़ला बिड़ला की बदनाम जातकी वह स्त्री अकालके कारण मारवाड़ छोड़कर आगयी थी। सुधीर देखता। उसे ऐसा लगता जैसे प्राचीन कालमें कोड़ोंके ज़ारपर गुलामोंसे काम कराया जाता था।

शाम होगयी। पुरबिया किसान लौटकर खाने-पीनेलगे। हरदयाल आज कुछ विचलित हो उठा था। उस बुढ़ापेमें भी उसका हृदय कुछ-कुछ-सा करनेलगा था। वह बैठकर भजन करनेलगा। जब इससे भी उसका मन नहीं माना तब वह मन्दिरमें चला गया।

पुरबिया किसान खा-पीकर आरामसे लेटरहे। वे देहके ताक़तवर थे। कभी उन्होंने किसीके हाथका छुआ नहीं खाया। एकबार उन्होंने लच्छोंकी ओर ललचाई आँखोंसे देखा भी था, किन्तु लच्छोंकी निर्भय आँखों

को देखकर उनकी दृष्टि पथरागयी और भूमिसे टकगकर चूर-चूर होगयी। तबसे उन्होंने उसकी ओर कभीभी नहीं देखा।

रातका आँधियारा सनसनाने लगा। इसी समय रामसिंहने सुना उधर पेड़ोंके पीछे कुछ न होनेवाली बात होरही है। उसने चुपचाप हरीसिंहका जगादिया। दोनों चुपचाप छिपकर देखनेलगे।

हरदयाल खड़ा था। उसकी बगलमें मारवाड़िन थी।

हरदयाल कहरहा था—‘देख मानजा, मालामाल करदूँगा।’

मारवाड़िनने कहा—‘मरदका क्या ? ऐसे कहके मुकग्नेवाले बहुत देखे हैं।’

हरदयालने उसकी ओर व्यंगसे देखकर कहा—‘जमाना तो अठन्नी का गुन मारहा है !’

स्त्रीने निस्संकोच होकर कहा—‘बौहरे, अपनी-अपनी सरधा है। तुम्हारे क्या कमी है ? भगमान्ने तुम्हें क्या नहीं दिया ?’

हरदयालने विवश होकर जाल फेंका—‘हटा एक रुपया लेले।’

‘वाह बौहरे ?’ मारवाड़िनने कहा—‘अपने बुढ़ापेको भी देखा है ? बन्दरकी-सी तौ सूरत होगयी है।’ हाथ नचाकर बोली—‘एक रुपया लेले ! घरकी बात समझ रखी है ? जाओ-जाओ पाँच रुपये लूँगी। वे तो अपने जैसे हैं, तुम तो बौहरे हो, समझो ? एक बात कैसे होजायगी ?’

रामसिंहको हँसी आगयी। इससे पहले कि हरीसिंह उसे रोके रामसिंह चिल्लाउठा—‘शाबास, बौहरे ! खूब हाथ मारा है ! बुढ़ापेमें पीपल लचकरहा है ?’

हरदयाल चौंकउठा। उसने एकबार इधर - उधर देखा और फिर अपनी कोठरीकी ओर चलपड़ा। मारवाड़िन फिर अपने तम्बूमें सोने चली गयी। हरीसिंह और रामसिंह लौट आये। रातभर इसीकी चर्चा रही।

प्रायः पूरे बाड़ेको बात सुनादीगयी। जवान औरतें खूब हँसी। लोगोको मारवाड़िनके प्रति एक श्रद्धा-सी होगयी। औरत कट्टर हैं—करती है तो मन की करती है! कोई फुसलाके जबरन कुछ नहीं करासकता। सुधीरने भी सुना। और मास्टर साहबको जाकर सुनाया। दोनों खूब हँसे। हरदयाल जब अपनी जगह जाकर बैठा उसने देखा मजदूर आज कुछ कानाफूमी कर रहे थे। आज उन लोगोके चेहरेपर एक कुटिल मुस्कराहट थी। दो एक जवान छोकराने पीछेसे आवाज़ भी कमी, किन्तु हरदयालने उनसे कुछ भी नहीं कहा।

दोपहरको जब वे लोग एक किनारे बैठकर रोटी खाने लगे, जब कुछ लोग बहरें सुरजनको छेड़ रहे थे, मारवाड़िनने रोते हुए प्रवेश किया। सब चौंक उठे। घासाने पूछा—‘क्यारी, क्या हुआ?’

मारवाड़िन चुप खड़ी रही। मजूर-मजूरिनोंने उसे चारों तरफ से घेर लिया।

हरदयालने उसे निकाला दिया था और उसकी आधी मजूरी दाबली थी। हरगोविन्दने कहा—‘तो क्या करोगी तू? मैं भी एक प्रोफेसरका नौकर था। उसकी बीबीने मुझे कहा—मेरे पैरोंमें मालिस करदे, मेरी साड़ी धोदे; मैंने इन्कार कर दिया। तो उसने मेरी तनखा दाबके मुझे निकाल दिया। मैंने कहा सुनी करके उसपै कचहरीमें दावा किया। मगर क्या नतीजा निकला। ऐसा इन्साफ हुआ कि मैं तो सुनके दंग रह गया। जजने कहा कि हरगोविन्द पेशेका नौकर है। उसके साथी कमीन हैं। प्रोफेसर इज्जतका आदमी है। वह बारह रुपयेके लिए भूँठ नहीं बोलसकता। मुकद्दमा खारिज। क्या कही? मुकद्दमा खारिज। सो लक्ष्मी, जो आठ रुपये खरच हुए सो अलग, बासकी बैठी। पूरी रकम थी।’

घासाने कहा—‘और कोई थोड़ी नहीं सो भी, जमा समझो पूरी!’

‘क्या कर लिया?’ हरगोविन्दने आँख निकालकर पूछा—‘क्या कर लिया? कुछ नहीं। प्रोफेसर अब भी फलफूल रहा है। हम हैं कि मेहनत

कगते हैं, तुम्हारे बाल-बच्चा यों होरहे हैं यों' उसने उँगली दिखाकर दुब-लेपनकी ओर इशाग किया और कहतागया—'मगर वे साले पान-पान सौ रुपये तनग्वा पानेवाले गेहूँकी खारहे हैं और तुम बेटा चनेकी भसको चनेकी!'

धीसाने कहा—'तो क्या करेगी?'

मारवाड़िन यह सुनकर हँसदी। बोली—'कहीं चली जाऊँगी' और क्या! पेटको नहा दोगा तो यहीं क्या करूँगी? देम छोड़ा तो पेटकी खातिर हा न? और सबतो राग-भमेला संग बैठे-सोयेका है। मुख तो पेट है लाला। जहाँ जाऊँगा मजूरी करके खाऊँगा।'

सब उदाम-से तितर बितर होगये। मजूरने उसके स्वाभिमान और स्वतन्त्र माहमको देखकर दग रहगयीं। मजूर उदास होगये कि वह उनके बीचमें एक रौनक थी जिसके चले जानेपर बातचीतका एक केन्द्र ही खोजा-यगा। मारवाड़िन वहाँसे चलीगयी।

दूसरे दिन अचरजसे लोगोंने देखा कि रामसिंह और हरीमिहकी कोठरीमें मारवाड़िन सोरही थी। रात भी वह शायद वहीं रही थी। फिरसे चर्चा चलपड़ी। अबके बड़ी निदा हुई। मगर वह बोली—'लाज उसकी जिसकी लाजको ढाँकने तनपर बस्तर हो।'

लच्छोको अपने पातिव्रतपर विशेष गर्व था। जब वह महरिसे मिली, दोनोंने उसे कुलटा और हरजायी-कुलच्छनी करार दिया। चलते-चलते महरिने कहा—'भैना, धग्म नहीं रहा; नहीं तो मरद किसका नहीं हाता? मगर मरद तो एक, और ऐसा जैसा अपना चोला, कि मौतसे पहले न छोड़ा जाय.....'

उसकी बातकी कद्र थी। उसने चूराके साथ जिस तरह निभायी थी उसे देख लोग उसे सती मानते थे। कुछ दिनसे पन्ना भी इधर-उधर न जाकर मारवाड़िनकी कोठरीके ही चक्कर लगाता फिरता।

शामको जब पुरबिया लौटते, चौका काटते, चूल्हा सुलगाते, खुद खाते फिर बाक़ी बचा चौकेके बाहर बिठाकर मारवाड़िनको खिलाते। सुबह उनके चलेजानेपर जब वह अकेली रहजाती, कोई उससे बात नहीं करता तो वह पन्नासे ही दिल्लगी किया करती। बाड़ेके लांग देखते। महरीने सुना। उस दिन शामको प्रमामान हुआ, किन्तु हर्गसिंहने डाँटकर कहा—‘खबर-दार जो चींचपाट की है, मुँह तोड़दूँगा, मुँह। लौंडा तो तेरा बदमास है, परायी बहू-बेटीके पीछे डालेगा तो उसका भला क्या कसूर है?’

सुननेवाले हँसपड़े। जाने क्यों महरी भी चुप होगयी। रामसिंहने पन्नाकी गर्दन पकड़कर कहा—‘बेटा, जब मुँहका दूध सूखजाय तब इधर आइए। समझा? समझा कि नहीं बोल; नहीं तो अभी लाश पटकके मारूँगा बोल! पन्नाने सुना और फ़ौरनही जब पन्ना समझगया उसने उसे छोड़ दिया। फिर वही कार्यक्रम चलनेलगा। धीरे-धीरे मारवाड़िनसे स्त्रियाँ मिलने-जुलने लगीं। विन्दिता चान्चाने कहा—‘तो क्या हुआ? धोखा ही सही, बेसा तो नहीं है! जात-पाँत तो तबतक है जबतक देस है, जब माँ बापने ही छोड़दिया तो वह क्या करे?’

बात फैलगयी, जमगयी, और बीचके गड्डेपर पत्थरकी पटियाकी तरह पड़गयी। आवागमन सरल होगया। पुरवियोंका धरम चलता रहा। लोगोंमें रामसिंह उसका पति प्रसिद्ध था, किन्तु वास्तवमें वह द्रौपदीकी भाँति जीवन बिताये जा रही थी। भेद इतना ही था कि पुगाने ऋषि-मुनि तरह देगये थे; आजकल मास्टर साहबको यह बिल्कुल असह्य था। बड़ी दिल-चस्पीसे पूरा किस्सा सुनते और अन्तमें कहते—‘हटाओ यार, तुम भी क्या गन्दी बातें लेबैठे?’

सुधीर हमेशा मारवाड़िनकी तरफ़ बोलता। मास्टर साहब विरुद्ध मोर्चा डाटते। एक दिन हरगोविन्द और घीसाके सामने ऐसीही बातें होतीं रहीं। शाम तक मशहूर होगया कि ऊपरका बाबू मारवाड़िन पै फ़िदा होगया

है। सुधीरने सुना। पहले तो हँसा और फिर निष्प्रभ-सा कुछ सोचने लगा। मारवाड़िनने तब सुना तो कोई ध्यान नहीं दिया। पूछने पर कहा—‘ओ तो बाबू है, उसका क्या?’ जैसे बाबू होने के कारण वह कोई पगया था और उसके दायरे के बिल्कुल बाहर था।

धीरे-धीरे कुछ महीने बीत गये। सुबह-शाम पुलिस के पड़ाव के सामने मिपाहियों की कवायद होती। कभी-कभी जमादारों की गन्दी गालियाँ गूँज उठतीं और फिर से जीवन चलने लगता।

लेकिन एक दिन फिर बाड़े में हलचल मच उठी। हरदयाल बाहर खड़ा चिन्ताग्रहा था। मारवाड़िन भीतर पड़ी कराह रही थी। उसकी आँखों में आँसू छारहे थे। आज उसकी सारी अकड़ खतम हो चुकी थी। सुधीर ने देखा। नीचे उतर आया। पूछने पर हरदयाल ने कहा—‘भाग गये वे दोनों बदमाश, इस कुतिया को छोड़ गये हैं।’

सुधीरने सुना और चुपचाप लौट आया। एक बार जीमें आया जाकर मारवाड़िन से पूछे तो क्या हुआ?

घीसाने कहा—‘बाबू भैया, कौन सुख नहीं चाहता! इसी दिन के लिए पुरखों ने धरम बनाये हैं। अब क्या करेगी? मरद को क्या, ठोका-पीटा छोड़ गया! लेकिन यह तो औरत है, किमका नाम होगा? उनका क्या? वे तो बदमाश थे: जोखों आयी भाग निकले कि अब बोझा कौन सम्भाले; इसे तो लादी उठानी होगी।’

मारवाड़िन के दोनों में से किसी एक का गर्भ रह गया था। आज वह शर्म से बाहर निकल नहीं सकी। हरदयाल कुछ देर तक तो देखतारहा। फिर चिन्ता कर बोला—‘निकल जा यहाँ से छिनाल, अब गेरही है? तब न सूझा था हरामिन, कुतिया?’

घीसा की माँ ने बढ़कर कहा—‘लाला, दया करो, गाभिन है! कहाँ

जायगी ! दो दिनकी बात है, माफ़ करदो । पेट उतर जायगा तो तुम्हारी ही चाकरी करेगी . . . '

हरदयाल चलागया । बूढ़ी अपनी कोठरीको लौटगयी । सब चले गये । केवल मारवाड़िन पड़ी-पड़ी रोतीरही । आज उसमें इतना भी साहम न था कि बाहर चली जाय । बाड़ेमें हरदयालकी दरियादिलीकी इन्तहा तारीफ़ें हांगही थीं । ऐसा दिल है तभी तो परमात्माने इतना दिया है, नहीं तो किमके पास है ऐसी माया ?

मारवाड़िन जब निकली तब पेटमें ऐंठा चलरहा था और चेहरेपर पीलापन हुमकरहा था । वह माँ बननेवाली थी—एक और कीड़ा पैदा होने वाला था !

—७—

### छोटी यातना : पशु

सामनेके मैदानमें शोर हानेलगा । सूरज डूबरहा था । और एक कोलाहल जो मानो दूर क्षितिजके पार कलरव करती लहरोंका मृदु - मृदु कम्पन हो, या बड़े दिनकी गिरजेकी घंटियोंकी तुमुल ऊर्मिल प्रतिध्वनि हो, और इमा बीच कभी कभी कोई गीत जैसे तारा टिमटिमा उठा हो । सुधीरने ऐसे देखा जैसे वह तूफ़ानमें फँसी एक छोटी सी नाव थी जिसके पतवार खोगये थे किन्तु बही जागही थी । कञ्जर डेरे गाड़ रहे थे । उनके पास विश्वासों की कैसीभी पराजय नहीं थी । वे ग्वाते थे, पीते थे, सोते थे, और उनकी सत्ता और एक पशुकी सत्तामें कोई भेद नहीं था । उनकी जवान स्त्रियाँ मद-मार्ती डोलतीं, बच्चे नंगे घूमते और पुरुषोंके चेहरेकी कठोरता देखकर लोग उन्हें बदमाश कहते । कोई कोई उनमेंसे तमाशे दिखाता । एक गाना गाता, साथकी जवान लड़की नाचती, और ऐसा अश्लील अङ्ग-चालन करती कि बरबस लोगोंको बादमें निन्दा करनेकेलिए रुककर उसे देखना पड़ता ।

वे लोग अपना दिन अधिकांशमें घूमतेहुए निकाल देते। इतनी ज़ोरसे बात करते कि देखनेवाला समझता लड़ाई होरही है और लड़ते तो किचकिचाकर झपटते, नाखनोसे खोंचते या काटखाते। कभी कभी उनके हाथोंमें छुरियाँ चमक उठती। तब दूसरे मर्द कज्जर आकर छुगी छीनलेते और फिर अलग जा बैठते। फिर लड़ाई होने लगती। बहुधा गंदी या औरत के पीछे लड़ाई होती। शामको ईंटोंके बने बगयनाम चूल्होंसे धूँआ उठने लगता और रातको चिथड़ोंके तम्बुआंमें वे सब जानवरोंकी तरह घुसजाते और स्वाँसते - खखारते चिमट चिमटाकर सोरहते। वामनाओंका नग्नसे नग्न रूप उनकेलिए एक स्वाभाविक बात थी। एक तरफ़ तम्बूमें मौँ-बाप सोते रहते, दूसरी तरफ़ बेटा और बहू।

मोतीने कुछ दिनसे कमालको छोड़कर गमभू करलिया था। इस पर एक दिन खून खच्चर होते-होते बचा दिनमें छोटे छोटे लड़के लड़की ही नहीं बड़ी-बड़ी जवान लड़कियाँ राहके किनारे डोलती रहती। कोई निकला नहीं कि पीछे होला। उनका धियाना, भाँग माँगना, इतना गंदा था कि लज्जित होकर राहगीरको उन्हें कुछ-न-कुछ देना हा पड़ता।

एक दिन एक बाबू अपनी पत्नीको लिये जारहा था। सड़कपर काफ़ी भीड़ थी। मोती उम बाबूके पीछे लगगयी। वह रिरियाने लगा—बाबू, तेरी ज़ती चाटूँ ! ऐ बाबू, तेरी बहूके गोरे गालोंपै काले तिलका क्रमम ! तेरा घर फूले फले ! तेरे बच्चे बड़े हों.....

गोरे गालोंपै काले तिलका वर्णन सुनकर राहगीर मुड़-मुड़कर देखने लगे। बाबूको लाचार होकर पैसा देनापड़ा।

दूसरे दिन ही पासमें किमी रईसके घर चोरी होगयी। दारोगाजीने फ़ौरन कज्जंगके चारों तरफ़ घेरा डालदिया। उन्होंने देखा कज्जरियाँ बड़ी कटीली थी। उनका जी आगया। क़ानून था कि ऐसे लोगोंको संदेहपर भी गिरफ़्तार किया जासकता है क्योंकि यह होते ही चोर हैं। इनपर मुकद्दमा

चलानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं होती। न्याय उनकी ओर था। जितने भी जवान कञ्जर थे वे सब गिरफ्तार करलिये गये। औरतें देखती रहीं, बच्चे सहमगये। रोयाधोया कोई नहीं। उन्हें यह सब देखनेकी आदत थी। उनके पुरुष अक्सर गिरफ्तार करलिये जाते थे। जबतक वे छूटकर न आते, तम्बू गड़े रहते। उनके आनेपर तुरन्त वह स्थान छोड़ दिया जाता।

सुधीर अपने कमरेसे यह सब चुपचाप देखा करता। बाड़ेमें सब उनसे नफ़रत करते थे। पुलिस चलीगयी। थोड़ी देरतक मैदानमें एक दमघोड़ सन्नाटा छाया रहा किन्तु उसके बाद फिर वही हलचल होनेलगी।

मोतीने पुकारकर कहा—‘आरी सुहैल, सुनती है ? अबतो कोई मरद नहीं रहा।’

सुहैलने ठहाका मारकर कहा—‘बुढ़े तो हैं ही।’ मोती भी हँसपड़ी। बूढ़ी कामनी भी आगयी। कामनीने कहा—‘आहो, दो दिन मरद नहीं रहा तो पगान सूखगये ! बेटी, अब तो यह लड़के कुछ नहीं करते। हमारे मरद तो दिन दहाड़े लूटलेते थे।’

मोतीने आँखें मिचकाकर कहा—‘तूभी तो तब जवान थी।’  
काकी हँसदो।

दो-तीन दिन बाद ही बूढ़े सबहके गये बहुत रातहुए लौटते। वे चोरी करनेमें असमर्थ थे क्योंकि उनमें अब फुर्ती नहीं बची थी। अब जो कमायी होती वह अलग अलग न रखी जाकर सामाजिक संपत्ति होती। किन्तु फिरभी पूरा न पड़ता।

मोतीने सुहैलको बुलाकर कहा—‘इस देसके मरद कैसे हैं ? किसी में दम ही नहीं लगता !’

सुहैलने कहा—‘उधर सिपाही रहते हैं। मुझे बुलाते थे। दूरसे रुपया दिखाया था। मैं डरके मारे न गयी।’

मोतीने कहा—‘हत्तेरीकी ! सच ! रुपया दिखाया था ?’

सुहैलने कहा—‘मगर दे ही देगा इसकी क्या पक्की है। वह तो पूरी छावनी है। मारेंगे तो ?’

‘ओहो’ मोतीने कहा—‘मारेंगे ऐसेही ? चल, संझाको चलेगी ?’

सुहैलने सहर्ष स्वीकार करलिया। धीरे धीरे सिपाही इधरही आने लगे। अब फिर मस्ती छानेलगी। दिन रात मैदानमें नाच-गाने हुआ करते। रातमें अब बूढ़े भी शायद जान-जानकर काफ़ी देरसे लौटते। अब वे पैसे बचाकर नहीं लाते। जो पाते हैं, वहीं शराब पीते हैं और जब लौटते हैं तो बूढ़े-बुढ़ियांमें दंगा होता है। जवान लड़कियाँ देख-देखकर हँसते-हँसते लोटपोट होजाती हैं।

बूढ़ी स्यामा कानी होगयी थी। उसका आदमी देखनेमें बिल्कुल भयानक पशु-सा लगता था। जब दोनों मत्त होकर नाचने लगते बच्चांका टोल हर्षित होकर ताली बजाने लगता।

शाम होगयी। मोती और सुहैल राहके किनारे बैठी बातें कररहीं थीं। अब थोड़ी ही देरमें सिपाही आने लगजायेंगे। सारी-की-सारी कंजरियाँ तम्बुओंमें तैयार होरही थीं। उनकी तैयारी कोई प्रसाधन नहीं था। मनकी चाह-मात्र थी। उसी समय सुधीर उधरसे निकला। मोतीने लपककर उसका हाथ पकड़लिया। सुहैलने पलभरको देखा और फिर दौड़कर दूसरा हाथ पकड़लिया।

सुधीर बोला—‘क्या है, क्या है ?’ उसको परेशान देखकर उनकी हिम्मत औरभी बढ़गयी। मोतीने कहा—‘बाबू ! एक अठन्नी देजा ! ऐ बाबू तेरा पैर धाऊँ ! ऐ बाबू तेरा ……’

सुधीर भीख माँगनेके इस नये तरीकेपर स्तब्ध रहगया। उसने जेब में हाथ डाला। केवल एक इकन्नी थी। उसने दोनोंकी ओर देखा। दोनों

मेंसे यौवनकी गंध आरही थी। देखनेसे ही लगता था कि यह स्त्रियाँ केवल इसीलिए हैं कि इनसे कोई ऐसीही वासनात्मक बात कीजाय। न जाने कितने युगोंके संकोचने उमके हृदयको जकड़लिया। उमने अपनेको छुड़ातेहुए इकन्नी फेंकदी। सुहैलने झुककर उठाली। किन्तु मोतीने कहा—‘ऐ बाबू मुझे ! मुझे भी कुछ देजा !’

सुधीरने कहा—‘एकको देदी। अब मुझे तुझे क्या ?’

मोती एकबार हुमका मारकर हँसदी। उमने अपनी आँख मिचका दा। कोई देख न ले इस संकोचसे सुधीर पानी-पानी होकर लाजमें गड़-गया। सुहैल ठहाका मारकर हँसदी।

सुधीरने कमरेपर आकर जब उम तरफ़ भाँका, उमने देखा उमकी इकन्नी झुककर उठनेवाली स्त्री अपने भारी लहँगेको नीचेसे दो जगह पकड़े उसे फैलायेहुए खड़ी थी। लहँगा नीचेसे चाँदकी तरह गोल फैलगया था और पर्दा बनानेका प्रयत्न कर रहा था। किन्तु फिरभी अपर्याप्त था। पीछे की भाड़ीके पीछे दाँखाके पैर थे और दो बड़े-बड़े : सिपाहियोंके बूट पहने।

सुधीरने देखा और घृणा और अपमानसे विचित्र होकर भीतर लौट गया। वे वास्तवमें विलकुल पशु थे। उसका हृदय इसे देखकर उद्विग्न-सा एकबार भीतर-ही-भीतर हाहाकार कर उठा। कुछही दूर पीछे कुछ लड़-कियाँ नाचरहीं थीं। उनका गीत आस्मानमें भँवर मारता काँपरहा था। किन्तु नारीका यह मोल देखकर उमकी अन्तरात्मामें शूल-सा चुभनेलगा। जिनके न लजा थी, न संकोच, न पवित्रता, न अन्य ही कोई भाव—वे पशु नहीं तो क्या हैं ? किन्तु न जाने कहाँसे सुधीरके मनमें एक करुणा जाग उठी। उमने कहा—वे पशु हैं क्योंकि वे अशिक्षित हैं, दरिद्र हैं, और संसार उनकी मजबूरियोंको लूटता रहा है। और सुधीर उदास होगया।

दिनमें ही घने बादल छागये। लच्छोने देग्वकर बाहर धूपमें फैले गेहूँ उठाकर भीतर टाट बिछालेलिया और बैठकर बाननेलगी। रामचन्दको बुग्वार था। वह चुपचाप खोर ओढ़कर पड़ा था। मारवाड़िन दर्दमें कगह रहा थी। घीमाकी माँ उसके पास बैठी थी।

मास्टर साहब बादलोंको देख-देखकर मगन होगहे थे। सुधीर चुपचाप बैठा था।

दोपहर ढले नन्ही नन्ही फुहारें आनेलगी। पेड़ पत्ते जमीन आस्मान सब धीरे धीरे भीगनेलगे। दूर कज्जर गीत गागहे थे। उनके बूढ़े उठ उठकर तम्बुआमें चलेगये। युवतियोंका गीत प्रबल और चुभीला बनकर आस्मान में गूँजरहा था।

चिड़ियाँ चहचहाती हुई घाँसलोंको लौटचली। हवा मनमनाने लगी। हरदयाल एक बनेहुए कमरेमें बठा काम देखरहा था। मजदूर कामपरसे हटनेलगे। उसने गरजकर कहा—‘किये जाआं काम। खबरदार जो हाथ हटाया है। मुफतकी मजूरी नहीं मिलेगी। ऐसी क्या कोई बाढ़ आगयी है?’

घीमा फिर काम करनेलगा। हरगोविन्द तथा अन्य सबभी फिर काम में लगगये, किन्तु पानाका वेग बढतागया। मुँहपर बौछार पड़नेलगी। तमाम बदन भीगगया। तब वे लोग भागकर अपनी-अपनी कोठारोंमें आगये। हरदयाल छतरी लगाये अपनी कोठरीमें जाघुसा। पानी बरसता रहा। उस भपानक वर्षामें आसपासके घर गिरनेलगे।

थोड़ी देरको पानी रुकगया। किन्तु फिर जब वह बरसनेलगा तो एकधर। रात बातगयी, दूसरा दिन भी बातगया। तामरे दिन सब लोगोंके दिल बैठनेलगे। घरामें खानेका सामान खत्म हागया था। बाहर जानकी कोई राह न था। पानी बरसगहा था, एकधर।

आज उन दलितोंको अपनी-अपनी चीज़ोंसे मोह होरहा था। वर्षा का पानी धीरे-धीरे बढ़ता देखकर उनका हृदय स्तब्ध होरहा था। बिंदिया अपने दोनों बच्चोंका मुँह देख-देखकर काँप उठती थी। महीने पन्नाको खींचकर अपने पास करलिया और रोतेहुए बोल उठी— 'पन्ना बेटा, अब क्या होगा ?' किन्तु उसने कुछ नहीं कहा।

सुधीर तीन दिनसे दफ़्तर नहीं जासका था। मास्टर बार - बार कहता था—'सुधीर बाबू, हेडमास्टर तो कहेगा हमें कुछ नहीं मालूम। नहीं आना था तो इत्तला क्यों न दी ?'

सुधीर सुनता और चुप होरहता। नीचेकी मंज़िल-भरमें शायद दो एक चूल्हे जलसके थे। सारे कंड़े और लकड़ियाँ गीली होगयीं थीं। बाहर मैदानके तम्बू हवासे तितर बितर होकर उड़गये थे। कज्जर उन्हें खींच-खींचकर फिर घर बनानेका प्रयत्न करते थे किन्तु आँधीमें उनका सब कुछ उड़ा जा रहा था।

चारोंतरफ़ पानी भरगया था। पानीकी भयंकर बाढ़ अट्टहास करती हुई मिगपर गरजरही थी। बच्चे रो रहे थे, औरतें मिसक रही थीं। जिस समय नरकके प्राणी आकाशकी शरणमें जा रहे थे उस समय भगवान् अप्सराओं को गोदमें लिये आमव पीरहा था और उसके न्यायदंडको लेकर लक्ष्मी नंगी नाचरही थी। इसके बाद ऊपरकी मंज़िलसे धीमा-सा संगीत पानीके गर्जनमें हिलारें भर उठा। सुधीर लुटा-सा, गमगीन-सा देखतारहा। उम का हृदय खोया-सा, मकपकाया-सा बिल्कुल चुप था। जब नीचेकी मंज़िल में पानी भरनेलगा, दौड़-दौड़कर नीचेसे लोग ऊपर जानेलगे। जंगलमें आग लगगयी थी। शेरनी और बकरी साथ-साथ आखड़े हुए थे। औरतें अपनी छाती खोलकर बच्चोंके मुँहसे लगालगा देती थीं, किन्तु बच्चे दूध पीते हैं, खून नहीं। मुद्दरमके धर्मान्ध मुसलमान जैसे हा-हा करके छाती पीटते हैं उससे भी भयानक स्वर मचरहा था। तमाम काम बन्द था। जीवन

की सत्ता बनाये रखनेवाले निर्जीव दक्कियानूसी प्राणी आज उदास और पराजित-से बैठे थे।

आस्मानमें बादल भीषण गर्जन कर रहे थे, ऐसा गर्जन कि नवोढ़ा जिसे सुनकर थर्रा उठती है।

इतनेमें ऊपरकी मंजिलसे एक ज़बर्दस्त ठहाका लगा। न जाने वह किस रईसका अभिमान था कि नाचनेवालीकी पायल बजती ही चलीगयी। उस ठहाकेकी प्रतिध्वनि आसपास सबकहीं गूँज उठी। सुधीरने सुना, जैस राम जलरहा था और नीरो अपने फ़िडिलपर लगातार अपनी उँगलियोंको चला-चलाकर अट्टहास कर रहा था। जैसे चंगेज़ लाखोंके मिर काटकर तलवारों की झनझनाहटमें उन्मादसे हँस रहा हो। पानाकी भीषण टोकरी और बादलों की गरजने उस ठहाकेको वाभत्स बना दिया। बादलोंके रुई-से बदनपर बिजलियोंके कोड़े पड़ रहे थे और वह भयंकर स्वरसे आर्त्तनाद कर उठते थे।

सुधीरने देखा, ज़िन्दगीका घर डूबरहा था किन्तु वे सर्वहारा अब भी नहीं मरे थे। उसने देखा कज्जरीकी बस्ती बह गयी थी और वे सब इधर ही भागे आ रहे थे। आज उनके पास कुछभी नहीं था। कल तक जो दूटे फूटे तम्बू थे वह भी अब नहीं रहे। अनेक दिनोंके भूखे वे कज्जर कुत्तोंके भुण्डकी तरह इधर ही भागे आ रहे थे। उनकी इस भगदड़ने सबको शक्ति कर दिया। लोगोंने दौड़-दौड़कर उनके पथमें बाधा उपस्थित करनेको दरवाज़े लगा दिये।

कज्जर और कज्जरियाँ कुछ देर पानीमें इधर-उधर भागते रहे। जब उन्हें कोई जगह नहीं मिली वे ऊपर चढ़नेको भागे। भीषण गर्षामें कई फिसल गये और गिरकर कराहने लगे, किन्तु फिर भी उन लोगोंके लिए किसीने भी द्वार नहीं खोला। वे वहीं पानीमें भोगते हुए खड़े रहे। उनके छोटे-छोटे बच्चे पेड़ोंके नीचे तनोंको पकड़े खड़े थे। हवासे उनके दाँत बज-

बज उठते थे। पानी घुटने-घुटने बहरहा था। औरतोंके कपड़े भीगकर उनके शरीरसे चिपकगये थे। वे प्रायः नंगी मी प्रनीत होरही थीं। बूढ़ोंको कुछभी सूझ नहीं पड़ता था। वे पानीमें खड़े केवल चिल्ला रहे थे। आकाशमें कभी-कभी बिजली कड़क उठती थी जिसको सुनकर कज्जरियाँ आत्त स्वरसे चिल्ला उठतीं थीं और बच्चोंकी तरफ दौड़तीं किन्तु टोकर खा खा कर गिर जातीं थीं।

और तबही अचानक कोठरीमें हरदयाल अपने रुपये गिनने लगा। सुधीरने सुना रुपयेका महानाद खन-खन करके गूँज उठा। यह रुपया नहीं था, गरीबोंकी हड्डियाँ कड़कड़ा रहा थीं; यह रुपयेकी आवाज़ नहीं थी, यह पोंपिआईकी मलतनत लुढ़क रही थी। यह खनखनकी मधुर तान नहीं थी, यह मौतके घण्टेका ढन-ढन शब्द तुमुल कोलाहल कर रहा था। आदमीके जीवनका कोई मोल नहीं था। यह रुपया नहीं था, यह जाते जागते आदमीका कफन था। यह दौलत नहीं थी, यह खोखली पीठवाली उभरी छाती थी। यह माँ नहीं थी, यह मरे बाज़ार जोवन बेचनेवाली हरजाई थी।

किन्तु वे अमहाय थे। उनके सामने इस भीषण समुद्रमें कोई ध्रुव तारा नहीं था। वे ऐसे भयभीत और बेज़बान थे जैसे दुनियाके शुरूके वन-मानव खोहों और पहाड़ोंमें विशालकाय मोटी ग्वालवाले अज़दहेको देखकर चट्टानोंमें दुबकते थे और वह उनकी तरफ हुंकार-गरजकर दुम फटकारता बढ़ाआता था।

कज्जरोंने सुना। एकाएक उनके सामने बिजली-सी कौंध उठी। पानी निरन्तर भग्ता जा रहा था। बच्चे तो प्रायः डूबने लगे थे। वे लोग एक साथ हरदयालकी कोठरीकी ओर दूट पड़े। ऊपरसे बाड़ेके लोग देखते रहे। ऊँची-ऊँची मंजिलवालोंने भी धबकाकर इधरही देखना शुरू किया। किसीका भी साहस नहीं हुआ कि बाहर आए।

कज्जरोंने बल करके दरवाज़ेको तोड़ दिया और उन्होंने हरदयालका

रुपया ऐसे लूटलिया जैसे वारन हेस्टिंग्मने बेगमोंकी लुटीहुई इज़्जतको लूटा था, जैसे करोड़ो भूखे हिन्दुस्तानियोंने अङ्गरेजोंके न्यायको लूटलिया है।

लूटकर वे लोग भागचले। घायल हृदयाल पड़ा छटपटारहा था। बाहर तूफ़ान गरजरहा था। भीषण हवाकी प्रतिध्वनि होरही थी—सूँ .. साँ.....

## कुछ नहीं

२७ मौनीगली

कूचा लाला माधोलाल

प्रिय प्रकाश,

तुम्हारा पत्र आया। और यह भी समझ लिया कि भाभीसे तुम्हारी बिल्कुल नहीं पटती। लेकिन यह भी समझ में नहीं आता कि विवाह का आखिर मतलब क्या है ? कहने को तो तुम बहुत कुछ कह जाओगे और मैं बिना दिलचस्पी लिये भी सुनूँगा ही, लेकिन बात इतने हीसे सुलझनेसे रही। विवाह की कहानियाँ यदि कोई सुनाने बैठ जाय तो भूतों की कहानियाँ भी इतनी अच्छी नहीं लगेंगी। कुँवागे लड़कियों का लड़कोंसे प्रेम, प्रेम का ही सबकुछ समझने का पागलपन या पति-पत्नी का सम्बन्ध, न जाने कितनी उल्टी-सीधी बातें हैं; और जो कहीं छिपा चोरी किसी की पत्नी या किसी के पति का सम्बन्ध हो तो भला क्या कहने ? एक पूरा चिट्ठा ही समझो।

लेकिन हाल में एक घटना होगयी है। हिन्दू धर्म खतरे में पड़ गया है। मेरी राय में बेचारा हिन्दू धर्म तो क्या, दुनिया का कोई धर्म नहीं जो इस हरकत से लड़खड़ा न उठा हो। मेरी नज़र में बात एक मामूली सी है। फिर भी तुम्हारे जीवन में नया कोण उपास्थित हो सके इसकी सम्भावना से ही तुम्हें लिख रहा हूँ। तुम जानते हो मैं लड़कियों का कोई अजीब चीज़ समझने से हमेशा ही इन्कार करता रहा हूँ।

परसों मैं शाम को घूमने जा रहा था। राह में देखा एक औरत खड़ी रो रही थी। देखने में वह किसी क्लर्क की पत्नी लगती थी। और थी भी वह सच-सुच ही वही जो मैंने सोचा था। मैं रुक गया। लोगों से पूछने पर पता लगा

कि उसका पति उसे रोज़ मारता है और घरसे निकालना चाहता है। इस लिए वह उसे पागल करार देना चाहता है। स्त्री कहती थी वह बदमाश है, झूठा है। सचमुच स्त्री उन्मादमें थी। शकलकी बुरी, रङ्गकी काली, और तुरा यह कि वह गर्भवती भी थी। मोच सकते हो कितनी भद्दी होगी? खैर, हम कुछ लोग मिलकर उसके पतिके पास गये। पनि एक क्लर्क था। कुछ पढ़ रहा था। हमने जाकर दरवाज़ा खटखटाया।

स्त्रीको देखकर मुझे यही विस्मय हुआ कि वह कितनी उन्मत्त थी। देखनेमें उसका कामातुर रूप वास्तवमें अमनुष्ट सा हाहाकार कर रहा था। पुरुषका शरीर उसके मूल्यका मापदण्ड नहीं होता। नारीका अपना शरीर ही इस समाजमें उसका एकमात्र सहायक है। मौन्दर्य्य और वासनाका मेल ही यह संसार सहसकता है। वह स्त्री जो विवाहके बन्धनमें पतिको सबकुछ अर्पित करदेती है उसका आधार ठोस और भौतिक है। कल्पनाकी सुन्दरियों से प्रेम करनेवाले अपने नैतिक व्यभिचारको छिपानेकेलिए ही संसारको माया कहते हैं। स्त्रीकी वह अतृप्ति ही कदाचित् उसके नारीत्वका एक सत्य था जिसे वह खोलनेमें भेपतीहुई अपने पतिके यहाँ दासीत्वका अपना अधिकार माँगरही थी। हमारा समाज उसे वह भी नहीं देसकता क्योंकि उसके पास कुछभी नहीं है। वह स्वयं कंगाल है किन्तु उसे अपनी दुर्गन्धपर ही भाषण अभिमान है।

सामने खड़खड़ हुई। उसके पतिने दरवाज़ा खोलकर हम लोगोको बिठालिया और अंगरेज़ीमें बातचीत करनेलगा। औरत इसपर क्रोधसे पागल होकर ऊलजलूल बकनेलगी कि मैं तेरा खून पीजाऊँगी। मैं तुझे जानसे मारडालूँगी। तू कमा-कमाके रंडियोंका पेट भरता है तभी मुझे निकालना चाहता है। मैं तेरा भण्डा फोड़दूँगी। आदि-आदि। पतिने सुना और मुस्कराकर मुझसे अङ्गरेज़ीमें कहा—‘आपने सुना? क्या यह औरत आपको पागल नहीं लगती?’

## कुछ नहीं

तुम बताओ प्रकाश, मैं क्या जवाब देता ? न मैं पतिको जानता था न पत्नीको । पति की तरफसे बोलता तो सब कहते मर्द कुछ करे कोई कुछ नहीं कहता, और स्त्रीकी तरफसे उठता तो पचास उँगलियाँ उठतीं कि औगठ मिली और झट उसके साथ होलिये । जैसे उमका पति तो कुछ है ही नहीं !

उस रात स्त्रीने अपने आपको उसकी दयापर पलनेवाली भिगवा-रिणी कहनेमें जो सकोच किया उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि नारी भी नरकी भाँतिही अपना स्वाभिमान रग्वसकती है । युगान्तरसे जो उसे पुरुषकी छाया बना दिया गया है उससे वह अपना अस्तित्व, अपनी मर्यादा भूल गयी है । यह तो जीवनका कोई कार्यवान् रूप नहीं कि दोनोंका एक दूसरेकी उपेक्षा करना ही उनकी सत्ताकी पूर्ण परख है । मैं जानता हूँ यह संघर्ष केवल इसीलिए है कि विश्वासोंका अहाता ऐसी गलत जगहोंसे बाँधा गया है जिनमें तात्कालिक और सामंजस्यको जगह-जगह अनुचित रूपसे काट दिया है । किन्तु जिसके पास लागत नहीं है वह कभी नया घर नहीं बना सकता । परन्तु इतिहासने कभी पाँवको रोका नहीं ।

लड़-झगड़कर अन्तमें स्त्रीने एक कोठरी बन्द करके भीतरसे ताला लगा लिया क्योंकि उसे भय था कहीं सबके चले जानेपर वह उसे फिर मारे नहीं । भीतरसे वह गालियाँ देतीरही और पतिने मुस्कारकर कहा—‘आपकी सेवाओंकेलिए धन्यवाद ! मैं तो उसे निकालता नहीं । जब उसे छिद्र उठती है तब भागजाती है, आपने अच्छा किया कि मेरी पत्नी फिर मुझे सौंपदी ।’

मुझे उसकी आकृतिपर एक कुटिल रेखा सरकती दिखायी दी । मैं लौट आया । उस रातभर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धका घोर विवेचन जीवनमें इतनी तन्मयतासे मैंने पहली बार किया ।

दूसरे दिन घर लौटते समय एक अजीब बात फिर देखी । तुम्हें याद होगा अमरनाथ एक अंधेड़ आदमी है । सब उसका मज़ाक उड़ाते

## कुल्ल नदी

थे कि अभीतक उसका ब्याह ही नहीं हो सका था। योरपमें क्वार्रा रहना एक गर्वकी बात समझी जाती थी। हमारे देशमें स्त्रियाँ उसे आदमी नहीं समझतीं जिसके कोई पत्नी न हो। पुरुष जबतक स्त्रीको अपने अधिकार में नहीं रख सकता, स्त्रियाँ उसपर हँसती हैं। जंगली पशुको जंजीरोसे बाँधकर ही पालतू बनाया जाता है। हमारे देशमें एक समझदार वर्ग भी है, जिस वर्गक सदस्य मिर झुकाकर, हाँकर समझौता करनेको सदैव तत्पर रहते हैं। उन्होंने देखा है कि जिन आधारोंपर वे खड़े हैं वह केवल अपनी सत्ता मात्र रखना है। यदि उसमें परिवर्तन किया जा सकता है तो वह चित्र ही मिट जाता है। जनका अभीतक वे रूप अपने मस्तिष्कमें चरम सत्यके रूपमें ग्रहण किये हुए हैं। जबतक मनुष्य समाजको शिष्ट नहीं देता तबतक उसे भीगवका अधिकार भी नहीं मिलता। अब संसार कहता है उसके क्या नहीं हुआ। पारसाल उसकी शादी होगयी। मुहल्लेमें एक लड़की थी क़रीब सोलह-सत्रह वर्षका। एक उसके छोटा भाई था। माँ-बाप मर चुके थे। चाचाने पाला था। चाची कर्कशा थी। बचपनसे ही लड़की भूखी रखा गयी। कमाने उसकी चिन्ता नहीं की। मुहल्लेके आवार लड़काने उसे पहलेसे ही भाँप रखा था। इधर वह चौदहकी हुई नहीं कि याराने उसके सामने मटाईके दोने मजा दिये। आजतकका जितना मतियोंका कहानियाँ मिलती हैं उनमें वे स्त्रियाँ या तो ग़रीबग़ाने का थी या पूज्य ब्राह्मणोंका रिश्तेदार। कभी तुमने बचपनसे ही ग़रीब और अपमानित लड़कोंको भी सता होते सुना है? हुआ वही जो होना था। लड़कोंका तो इस तरह पेट मँजोसे भरने लगा। बात धीरे धीरे मुहल्लेमें फैल गयी। चाचा झुक मारते रह गये, कल तक भतीजीको भूखा मारनेमें जनका आत्माने तनिक भी कसक नहीं खायी आज उनकी माँसकी नाक के मौजूद रहते भी इज्जतवाला नाक कट गयी। यह नाक तब नहीं कटी जब अफ़ससके सामने उन्होंने उसे रगड़ दिया। इसलिए कि यदि वह यही नहीं करते तो उनका पेट कैसे भरता! पेट है तो उन्हींका है। लड़कोंको उसे

## कुछ नहीं

भरनेकेलिए कोई भी अधिकार वे नहीं दे सकते । देशकी स्वतन्त्रता बेच कर वे अपना ईमान बनाये रखना चाहते हैं । कहाँ है ऐसी पददलित नारकीय सत्ताका न्याय ? कहाँ है मनुष्यताका अपना सहेजा परम्पराका दुलार ? कुछ नहीं, केवल पराजय, भूठ, एक दूमरेको धोखा देनेकी छलना । गँदले पानीमें रहनेवाले मेंढक क्या जानें कि पानीका स्वच्छ प्रवाह क्या है ? आँख खुलेसे मुँदे तक जिनका जीवन एक वास्तविकताको दूर रखनेका पाखंड है वे दावाला ताड़कर खिड़की क्या बनायेंगे ? और लड़की तन भी नहीं बेच सकती ? उनकी स्त्रीने और किया ही क्या है ? एक दामीमात्र ही तो है वह ! वही चाची भी शर्माकर चुप होगयी । लेकिन लड़कीका तो ब्याहना था । क्या जाने किम दिन चाचा नवासेका मुँह देखते और जमाईका पता नहीं चलता । उन्हीं दिनों अमरनाथ दिल्लीसे आगरे आया था । चार साल बाद जब वह लौटा तो चाचाने उससे दोस्तीकी । हमउम्र थे, कुछ देर भी नहीं लगी । घर लेगये लड़की दिखायी । वह बेचारा पसन्द-नापसन्द क्या करता ? उसे तो क्वारंपन मिटाना था । तैयार होगया । शादी होगयी । मुहल्लेके लोगोंने उसे खूब भड़काया भा मगर वह यही समझता रहा कि मुझे क्वार्रा बनाये रखनेकेलिए बदमाशोंने गिगेह बाँधकर पड़यन्त्र रचा है ।

विवाहके समय वह पैतालीस सालका था । बाल सफ़ेद होनेलगे थे, बल्कि महाशय आगेसे गंजे भी थे । शरीरकी गठन लटक गयी थी । बीबी सोलह-एककी जिसका यौवन इतना लुटकर भी अग्रणीत स्तनोंसे भरे कोष्ठके समान था । समय अपने हाथोंसे जिसे लूटरहा हो, उसे मनुष्य, यह निर्बल जन्तु, क्या छीन सकेगा ? पुरुष अपनेको स्वामी बनाकर भी जब अपनी प्राकृतिक वासनासे उसके सामने धिधियाता है तब उससे बढ़कर कौनसा प्राणी है जिसे तुम घृणित समझ सकनेका असम्भव काम कर सकते हो ?

आज वह सोलह वर्षकी लड़की अपनी जवानीका जवानीसे संतु-

## कुछ नहीं

लन नहीं करसकती । दानका पशु बँधा रहनेको है जैसे कोई गाय । जब मालिककी मर्जी हुई गाभिन कराली अन्यथा कुछ नहीं का यह अभिशाप हमारे संस्कारोंका सबसे बड़ा मोल है । गर्म-गर्म वासनाओंपर ठंडा पानी डालकर उससे कहागया है कि भाफ नहीं निकलनी चाहिए क्योंकि भाफ में शक्ति होती है जो इस्पातको फाड़कर बाहर निकल जाती है ।

और लड़की चुपचाप सब मानकर अपने कर्मोंको पाप समझकर ग्लानिसे दबी जाती थी । मुहल्लेका हर लड़का उसे देखकर किचकिचाता था और अब वह सबके सामने आँखें झुकाती थी । उसका छोटा भाई फिगभी सड़कपर मारा-मारा घूमता था और किसीने दो पैसे दिये नहीं कि वह उसीका खत बहिनके हाथपर रखदेता । बहिन पीटती, वह गेदेता और फिर सड़कपर भाग आता । छोटा-सा बच्चा है, सात आठ सालका ।

मुहल्लेमें गज्जूका नाम आजसे नहीं सात सालसे मशहूर गुण्डोंमें लियाजाता है । उसने उस लड़कीको कहींभी देखा नहीं कि बकना शुरू करदेता । अब भूलगयी है महारानी ? कलतक तो हमने नहीं देखा तो खाँस-खाँसके बुलाया करती थी !

वह सुनती और सर झुकाये चली जाती । शारीके पहले उसको दो प्रेमियोंको लड़ा देनेमें खास मज़ा आता था । किसीभी धर्मके हिसाबसे वह पाप थी । क्योंकि धर्मका आधार नारीकी शारीरिक पवित्रता है । यह पवित्रता वास्तवमें पुरुषका कुटुम्ब बनाये रखनेका मूलमन्त्र है । जब स्त्री उच्छृङ्खल होउठती है तब सारी शृङ्खलाएँ तड़तड़ाकर चटकजाती हैं । किन्तु जहाज़ जब समुद्रमें अकेला चल निकलता है तब उसे पानीकी अधिक शक्ति सहनी पड़ती है । मैं उन लोगोंको भी जानता हूँ जो कहते हैं कि नारीने आरामसे रहनेकेलिए पुरुषको इतने अधिकार दिये हैं । हिन्दु-स्तानियोंने भी आरामसे रहनेकेलिए ब्रिटिश साम्राज्यवादपर इतना भार छोड़दिया है । सभ्यता सिखानेकी आड़ बनानेवाले यह अन्धकारके प्रेत

## कुछ नहीं

वास्तवमें एक दूसरेका गला घांट सकते हैं, क्योंकि उममें उनके स्वार्थ लित रहते हैं। और कुछ नहीं। यह कुछ नहीं मुझे पागल बना रही है क्योंकि शून्यपर टकटकी लगाकर साधना करनेके व्यक्तिगत मोक्षमें धृष्टता करने लगा हूँ। धार्मिक रूप और नीतिसे सती बनी रहनेकेलिए उसे जीवित रहने का कोई साधन ही न था। मैं पूछता हूँ क्या जवानी बेचना पाप है या कुत्तेकी तरह निरीह खा पीकर मर जाना ? तुम कहोगे रूखा सूखा खाकर और पवित्र रहना ही मनुष्यका सर्वोच्च आचरण है। लेकिन जो ऐसा उपदेश देते हैं वे न भूखकी व्यथा जानते हैं न यही ममभक्ते हैं कि सुख की जो अनुचित प्रेरणा होती है उममें, उचित साधनोंसे प्राप्त आनन्दसे, कहीं अधिक बल और उत्तेजना होती है।

और कल वही गज्जो वहीं कहीं तक लगाये बैठा रहता होगा। लड़की घरमें अकेली थी। अमरनाथ कहीं गया था। ज़बर्दस्ती गज्जो उसके घर में घुस गया और उसे दबाने लगा। पहले तो लड़की मना करती रही, लेकिन बादको जब वह यह धमकी देने लगा कि तमाम पुराना किस्सा खोल देगा तो वह काँप गयी। ममभक्ती थी कि अमरनाथको कुछभी नहीं मालूम। अब उसे शोक होता : क्यों न दुख सहकर भी उसने इस चादरको कोरा रखा ? हिन्दू समाजमें बहुत सी जवान विधवा नहीं होतीं ? यदि अमरनाथ जान जायगा तब वह क्या करेगी ? वह उसे घरसे लात मारकर निकाल देगा। और संसार कहेगा ठीक है। ठीक तो शायद वह स्वयं कहेगी। परम्पराका मैल क्या शीघ्र ही जा सकता है ?

आज यदि वह पवित्र बननेका प्रयत्न भी करे तो कोईभी उसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं होगा। सारे पाप धुल सकते हैं, एक यही पाप नहीं धुल सकता ? यद्यपि इसका पीछे कोई चिन्ह तक नहीं रहता। क्षण भरका वह शारीरिक आनन्द ही जिसकी चरम अभिव्यक्ति है वह आत्माका पाप कैसे हो सकता है।

## कुछ नहीं

गज्जोने धमकी दी कि वह उसकी पहली पोलोंका काला चिट्ठा सब के सामने छपवाकर बँटवादेगा। वह झुकगयी। गज्जोके दोस्तोंका तो मालूम था ही। इस जलनसे कि गज्जो फिर गोता मारकर मोती निकाललाया उन्होंने बाहरसे कुएड़ी चढ़ादी। हालके हालमें मुहल्लेवाले बिरादरीवालोंकी भीड़ इकट्ठा होगयी।

परसोंवाला क्लर्क भी आगया। आखिर दरवाज़ा खोलागया। गज्जो निकला। अब क्या था? घर-घर खबर बिजलीकी तरह फैलगयी। औरतों के झुंडके झुंड आनेलगे। क्लर्कसाहबने आगे बढ़कर उस लड़कीका अपराध सबके सामने खोलदिया। क्लर्कसाहबका चरित्र अच्छा समझा जाता था। इसी समय अमरनाथ भी लौटआया। उसने भी सुना और क्रोधसे पागल होउठा। तीगकी तरह भीतर घुसा, जैसे जानसे मार डालेगा। मगर भीतर घुसकर देखा तो चुप रहगया। लड़की निस्महाय-सी बैठी थी। अमरनाथ ठिठक गया। उसने देखा जैसे वह लड़की बिजलीसे चोट खाकर स्तब्ध - सी मुन्न पड़गयी थी। एकबार उसने अपनी ओर देखा, एकबार उसकी ओर। मुहल्ला बाहर इकट्ठा होगया था, जैसे इससे बढ़कर स्त्रीकेलिए कोई पाप नहीं होमकता।

हमारा पाप पुण्य परखनेका नैतिक ज्ञान इतना कलुषित और संकुचित होगया है कि एक स्त्री-पुरुषके मौन सम्बन्धपर ही धर्मकी दीवार खड़ी करते हैं। अमरनाथको एक - एककर याद आया। मुहल्लेकी चार भाभियाँ एकबार जब वह क्वॉरा था तब उसकी क्या न थीं? और आज भी कोई गज्जोसे कुछ नहीं कहता! फिर इस लड़कीने ही ऐसा क्या अपराध किया है। आखिर बचपनमें ऐसी भूल कौन नहीं करता?

उसने देखा वह फूट-फूटकर रो रही थी। उसने उससे कुछभी नहीं कहा। जाने क्यों उसका मन पसीज उठा। इतने दिनोंमें वह उस लड़की के बारेमें सबकुछ सुनचुका था। घृणाके स्थानपर उसे सदा उसपर करुणा ही आयी।

## कुछ नहीं

बाहर लोगोंने तय किया कि अमरनाथको अगर बिरादरीमें रहना हो तो वह उस लड़की को घरसे निकालदे। अमरनाथ बाहर आया और उसको देखकर क्लर्कसाहबने धोपणाको दुहरादिया। मुन्नुकी बूढ़ी बूआ है न, उसका कथन वेदवाक्यकी तरह स्त्रियोंमें चलता है। उसने सीधे सीधे शब्दोंमें अमरनाथसे इन्हीं शर्तोंको दुहरादिया। लेकिन अमरनाथने थोड़ी देरतक कुछभी उत्तर नहीं दिया। उसने सिर उठाकर देखा। लोगोंके मुख पर घृणा, तिरस्कार, और विक्षोभके चिन्ह थे। वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इतनी बड़ी बात उसपर ऐसे फिसलगयी जैसे चिकने घड़रसे पानी। आज उसपर आधिकारी होनेका दायित्व था। उसका बुद्धिपर एक लड़की का जीवन था। क्या उसका मान एक स्त्रीके वेश्या होनेपर जीवित रह सकेगा ? जब वह गर्मी और सूझाकमें तड़प तड़पकर जानदेगी उस समय किस मुख से वह स्वर्गका साढ़ापर चढ़ सकेगा ? संसारकी कोई स्त्री उससे विवाह करने को तत्पर न थी। वह एक फँसगयी ही-सी जो उसपर आश्रित है उसे वह कुचलदे क्योंकि उसे इसका अधिकार मिलगया है ?

सामने क्लर्क खड़ा था। अमरनाथ जानता था कि इस लम्पटके भीतर का विप ही ऊपर पुण्यके ये भाग बरसारहा है। इन धड़ोंके मुँह इतने सँकरे हैं कि भीतर हाथ देकर अच्छी तरह इन्हें माँजा भी नहीं जासकता। और वह खड़ागया जैसे कुछ नहीं हुआ। उसने कहा—‘जो होगाया गोहोगया। अब अपने अपने घर जाइए।’

‘नहीं’ बूआ गरजी, ‘तुझे उस कुलटाको निकालना पड़ेगा। ऐसी भी लुगाईकी क्या गुलामी ?’

किन्तु अमरनाथने कड़ककर कहा—‘जाओ, जाओ, घर जाओ अपने, समझी ! जब तुमने मुझ बूढ़ेसे इसकी शादी करायी थी तब वह जायज़ था ? और अब इस छोटी-सी गलतीपर इसे मैं निकालदूँ तो इसका

## कुछ नहीं

क्या होगा ? दर-दर मारी मारी न फिरेगी ? जाओ, जाओ ! वह मेरी बहू है, किमीका क्या लेनदेन है ?'

इसपर सबने दाँतोसे जीभ काटली । मगर क्लर्कसाहब बोल उठे—  
'चलो ठीक है । तुम बूढ़े हो, तुम्हें तो रमोईदारिन चाहिए था, सो मिल-  
गयी । बीबीका सब इच्छाएँ पूरी करनेकेलिए तुमने ब्याह ही कब किया था !'

पापकी यह पुकार एक पड़्यन्त्र है । इसमें हमारा स्वाखलापन सारे  
आदर्शोंको ठोकर मारकर नङ्गा नाचने लगता है । आये कोई और अपना  
प्रशस्तिके रक्तलिखित गीत सुनाये । आज मानवका सम्पूर्ण पतन हागया  
है । इस वेदीपर नग्नलिके अतिरिक्त किसीकी भी प्रशंसा नहीं कीजामकनी ।

अमरनाथने सुना और भीतर-ही-भीतर वह लज्जासे मिकुड़गया । जिस  
पौरुषपर बच्चा पैदा-भर करनेको गर्व करके भारतीय डींग मारते हैं, उसका  
आजकल एकमात्र उपयोग समझते हैं, वहभी उससे छीन लियागया था ।  
जिमके बलपर नारी मुँहखायी सी भालूकी तरह उसके पीछे दौड़ती है, उस  
पर ही इस क्लर्कने धोरा प्रहार किया था ।

मामने यह एक विचित्र व्यक्ति था जो पापको घरमे देखकर भी  
उसे पालकर बढ़ारहा था जैसे उस लड़कीने कुछ नहीं किया ।

जन समाज ठटाकर हँसपड़ा । लोग अपने-अपने घर जानेलगे ।  
उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं हुई । शामतक सबके मुँहपर यही बात रही ।  
भगवान् राम तक यह नहीं कसके थे । भीष्म पितामह तकके पुरुषार्थको  
शिशु बालने नपुंसकता कहा था ।

तुम क्या सोचते हो ? इस दाम्पत्य जीवनका प्रेम कहाँ है ? यदि  
प्रेम दया है अथवा बाँटतोला है तो वह न रहस्य है न कोई अद्भुत कल्पना ।  
क्या अमरनाथ बनना कठिन है या क्लर्कसाहब ? मैं तो दोनोंको ही कोई  
बड़ी बात नहीं समझता । हमारे पास कुछ है ही नहीं जिससे हम मन बह-

## कुछ नहीं

लायें । अतः यही एक चक्कर है जिसमें निरन्तर दौड़ते रहते हैं, मगर बाहर नहीं निकल पाते और अपनी ही पगध्वनिसे डरकर बार बार मूर्छित हो जाते हैं ।

लिखते लिखते थक गया हूँ, फिर कभी लिखूँगा । भाभीसे नमस्ते कहना । मेरी राय है तुम पहले प्रेम न करके कैदियोंकी तरह ही सही, साथ-साथ रहने लायक समझौता कर लो, वरना छोड़छाड़ दोगे तो जानते ही हो क्या होगा ! प्रेम तो एक लाचारीका मसविदा है । अब नहीं है तो कल हो जायगा और कुछ नहीं है तो वही करना होगा । थोड़े दिन बाद तुम्हारे अनुसार प्रेमकी नयी परिभाषाएँ बन जायँगी ।

शेष सब कुशल है । एक बात अवश्य है । कैसाभी माननीय समझौता हो वह परोक्ष रूपमें होता पराजय ही है । उत्तर देना ।

तुम्हारा ही  
सोमनाथ

## • देवोत्थान

भोर हुई, जागरण हुआ । नन्दन वनमें सुगमित सर्माग अलमा-  
कर गूँज उठा । मादक परिमलको हिलो-से स्निग्ध प्रकाश झिलमिला रहा  
था । शतदल शय्यापर इन्द्राग्नी अंगड़ाई भर उठी । सहसा उम युगोंकी  
शान्तिको धरधराहटकी भाँपण ध्वनिने तोड़ दिया । चौककर मेनका उठ  
बैठी । इन्द्राग्निने उसकी आंग देखा और भयभीत सी दोनों इन्द्रके वक्षसे  
चिपक गयीं ।

‘देव, वृत्र आरहा है ।’

देवराज ठठाकर हँस पड़े । बोले, ‘देवी, यह वृत्र नहीं, बरकर फ़ासिस्टों  
के वायुयान आवाके वक्षस्थलको चीरकर गरजरहे हैं ।’

‘ओह’, प्राणोंको धैर्यने आश्वासन दिया । मिहद्वारपर दुन्दुभी  
बजने लगी । गन्धर्वोंने वीणाके तारोंपर उँगलियाँ फेरीं । वही अजन्म-  
विलासका महानद उमड़ पड़ा ।

इन्द्रने वज्रको उठाते हुए कहा—‘देवी, एक दिन यह वज्र अभेद्य  
था, पर न जाने मानवने इससेभी अभेद्य अस्त्रोंका आविष्कार कैसे कर  
लिया । यह त्यागका वरदान आज न जाने मुझे जीवनसे इतनी दूर कैसे  
खींच लाया ?’

दो काली छायाएँ आकर इन्द्रके चरणोंपर लेट गयीं ।

एक ने कहा—‘देव, मैं अभी तक आपके शासनका प्रतिनिधित्व  
कर रहा था ।’

दूसरे ने कहा—‘देव, मैं आर्थिक रूपसे इसकी सहायता कर रहा था ।’

उर्वशी मुसकराई । उसने पूछा—‘तुम कौन हो, इतने जर्जर ?’

## देवोत्थान

एकने कहा—‘मैं अन्धविश्वास हूँ। अपनी-अपनी कमरमें डोर बाँधकर दूसरा छोर मानव विश्वमें बाँधकर यहाँ तक उड़कर आये हैं।’

दूसरे ने कहा—‘देव, मैं साम्राज्यवाद हूँ। जर्जर विघ्न हो गया हूँ। अब रहा नहीं जाता। मेरी रक्षा करिए। मेरे अन्तके साथ आपका भी तो नाश है।’

इन्द्राग्नी बोल उठी—‘किन्तु तुमने हमारे नामपर शोषण और अत्याचार क्यों किया?’

साम्राज्यवाद पुकार उठा—‘देव, यह मानव तो अब पुरानी लीकों को बिल्कुल छोड़ देना चाहता है। महाराजाधिराज, इन अनीश्वरवादी राजाओंको समाप्त क्यों नहीं कर दिया जाता?’

वरुणने दौड़कर यमसे कहा—‘चलिए वहाँ कुछ लोगोंको दण्ड दीजिए।’

यमने कहा—‘मगर यह तो कलियुग है! मेरी शक्ति तो क्षीण हो गयी है। क्या करूँ, गुस्सा तो बहुत आता है। रुद्रसे कहो न कि वे ध्वंस करें?’

देवताओंने समवेन-स्वर्गसे आवाहन किया—‘हे मृत्युञ्जय, नृत्य करो!’

महारुद्रने चरण उठाया, किन्तु युद्धकी भीषणतासे काँपती पृथ्वीपर उनका चरण काँप गया। पार्वती दौड़कर उनके गलेसे लग गयी। बोली—‘रहने दो। तुम्हीं एक भोलेभाले मिच जाते हो सबको! यह क्या, पाँव लहलुहान होगया?’

रक्तसे पाँव लाल था।

यमने कहा—‘यह तो मृत्युलोकमें मानवका बहाहुआ रक्त है!’

सरस्वती बोली—‘ओह, मेरी वीणाका नाद कोई नहीं सुनता!’

स्वर्गमें कोलाहल मच उठा। चाहि माम् चाहि माम्के स्वरसे इन्द्र भी विचून्ध होगये।

उनके मुखसे सहसा निकल गयी—‘यह क्या?’

‘देव!’ चीत्कार हुआ। स्वर्ग पृथ्वीसे दूर हो चला है।

अन्धविश्वास और साम्राज्यवाद क्रोध और भयसे काँपने लगे।

वे बोले—‘महाराजाधिराज, कोई इस डोराके मानव-विश्वमें बँधे छोरको काट रहा है।’

‘लौट जाओ! लौट जाओ!!’ इन्द्राणी चिल्लायी।

इन्द्रने कहा—‘चलो मैं पहुँचा आता हूँ।’ वरुण और सूर्य भी साथ चले। इन्द्रने एक जर्मन वायुयानमें बैठनेकेलिए बुलाया; किन्तु उसी समय रूसके ऐन्टी-एयरक्रफ्ट गनके वारसे वह हवाई जहाज़ गिरकर जलने लगा। वरुण काँप उठे। बोले—‘बाल-बाल बचे! अरे इन्द्र, कहाँ आ गये? कमबख्त लड़ते हैं, लड़ने दो! कौन अपना नुक़्तमान हार रहा है? पूजाके समय खाने आ जायेंगे! चलो।’

इन्द्रने कहा—‘नहीं सूर्य, तपो, तपो! कि यह अनीश्वरवादी भस्म हो जायँ। सूर्य लाचारीके स्वर्गमें बोल उठे—‘क्या बताऊँ? आप कहेंगे कि पौरुष नहीं रहा। मगर सृष्टिका नियम ही ऐसा है कि मैं दिनपर दिन ठंडा हुआ जा रहा हूँ और उधर रूसकी बर्फ़पर मेरा कुछ असर भी नहीं होता।’

‘यह कौन मंत्रोच्चारण कर रहे हैं?’ इन्द्र ने पूछा।

साम्राज्यवादने कहा—‘आर्यपुत्र हिटलर और सूर्यपुत्र जापान पूजा कर रहे हैं।’

‘और यह क्या है?’ वरुणने पूछा। साम्राज्यवादने खिसियाकर कहा—‘श्रीमान्, यह स्तालिनवाद है। नाक रगड़कर मर गयी, मगर इसे

## देवोत्थान

नहीं जीत पाया। यहाँ लोकशक्ति इतनी प्रबल है ! समझके परेकी सी बात है। मुझे कभी-कभी संदेह होता है कि आप तो कहीं इन्हें सहायता नहीं दे रहे।’

‘अजी राम भजो भाई साम्राज्यवाद !’ इन्द्रने कहा—‘यह क्या कह रहे हो ? देवताओं पर अविश्वास ? तब तो तुम्हारा नाश अवश्यम्भायी है।’

‘मेरे साथ आपके साम्राज्यका भा तो नाश है।’

यह सुनकर इन्द्र असमंजसमें पड़ गये। वरुणने इधर-उधर देखा। महमा वह पुकार उठा—‘इन्द्र, वह देखो स्वर्ग कितना धुँधला, संकुचित और क्षीण होकर न जाने कहां दूर उड़ता चला जा रहा है ?’

इन्द्रने देखा।

वरुणने फिर कहा—‘अब अपना स्वर्ग संभालियेगा कि यह पृथ्वी ?’

इन्द्रने कहा—‘चलो।’

इन्द्र और वरुण उड़चले। सूर्यने रात्रको बढ़ाया। साम्राज्यवाद चीख उठा—‘मौक़ेपर दगा दे रहे हो ?’

दूसरे आवाज़ आयी—‘बाज़ आये तुम्हारी दुनियासे।’

साम्राज्यवाद पुकार उठा—‘मैं तो लुट गयी !’

देवताओंका क्षीण उत्तर सुनायी पड़ा—‘मानव जनशक्ति अपार है।’

साम्राज्यवादने रोग उठायी—‘यह सिंहासन, यह महल, यह मदिरा, यह अम्परा.....’

शब्द हवामें तैर उठे—‘किसान मज़दूरोके मुँह कौन लगे !’

साम्राज्यवाद गरज उठा—‘मेरी रक्षा करो.....’

प्रतिध्वनि वायुमें विलीन होगयी—‘हमें अपनी इज्जत प्यारी है। आजसे तुम्हारी दुनियासे नाता ही टूट गया.....’

## देवोत्थान

अन्धविश्वास अबतक चुप था। अब सूर्यसे बोल उठा—‘कहाँ जा रहे हो ? सुनो तो !’

सूर्यने कहा—‘प्रातः सन्ध्या मैं जिस भारत भूमिसे अर्घ्य पाता हूँ उसका क्या हाल है ?’

साम्राज्यवाद किटकिटाकर बोला—‘वह गुलामीमें जकड़ी है। भूख, हत्या, बलात्कार और नङ्गापन मेरा साम्राज्य चला रहे हैं।’

सूर्यने विस्मित होकर पूछा—‘भीम और अर्जुनके देशमें ?’

साम्राज्यवादने कहा—‘वे तो मर गये। अब वहाँ आपमें भी अधिक मेरा राज्य है ?’

सूर्यने रथ बढ़ाते-बढ़ाते पूछा—‘यह कब हुआ ?’

अन्धविश्वासने कहा—‘तब देवता मोग्हे थे।’

सूर्यने कहा—‘तो क्या चाहते हो ?’

‘जापान और जर्मनीका नाश। और गुप्त रूपसे चाहते हैं कि रूस भी अधिक न बढ़ने पाय।’

सूर्य बोला—‘यह क्या ? कहते हो कि बगबरीकेलिए, धर्मकेलिए, मानवताकेलिए लड़ते हैं, और हिन्दुस्तानको आज़ाद नहीं करते ? यह कैसी स्वार्थ और अन्धकार भरी बात है ?’

साम्राज्यवाद बोल उठा—‘हाँ तुम भी चले जाओ। जबतक जान रहेगी तबतक गुलामीको रक्वेंगे … … …’

एक हँसिया नीचेसे आकर अन्धविश्वासके लगा। वह गिर गया। सहसा नीचेसे भीषण गरज उठी। उस हुंकारसे साम्राज्यवाद काँप उठा।

सूर्यने दूरसे पूछा—‘यह क्या हुआ ?’

## देवोत्थान

‘हिन्दुस्तानमें एका होगया । अब कहाँ बचूँ ? उन्होंने गुलामीकी जंजीरोंको तोड़दिया है ।’

पृथ्वीसे भीषण जनगान ध्वनि उठरही थी—

हम मज़लूमों की मेहनतसे

था स्वर्ग बना साम्राज्य बना,

है आज लिया बदला हमने

ऐ भंडे लाल सलाम तुम्हे ।

साम्राज्यवादके पैर लड़ग्वड़ाये और वह मूर्छित होकर गिरगया ।  
आकाशमें भंडा फहर-फहरकर पूछ उठा—सुना करते थे यहाँ कोई स्वर्ग  
था ? कहाँ है वह स्वर्ग ? पृथ्वीसे भी अच्छा वह स्वर्ग कहाँ है ?









